जल की खोज : अमृत की प्राप्ति

¤

लेखक :

मिश्रीलाल जैन, एम्. काम.

गुना

¤

प्रकाशक

मदनमहल जनरल स्टोर्स

राइट टाउन, जबलपुर 482 002

(फोन नं०—21791)

¤

प्रथम बार] 1982 [मूल्य : 10.00 रुपये

अनुक्रमणिका

सरस्वती......राजन् ! कभी सोचा कौन सी गन्ध थी, कौन-सी उपलब्धि थी जिसके पीछे बुद्ध और भगवान् महावीर विह्वल हो उठे थे ? पराई पीर को अपनी पीर समझने वाली दृष्टि कहाँ से लाओगे ? राजन् ; अपनी पीड़ा से तो पशु भी कराह लेता है, अपने दुखों में तो सबकी आँखें आर्द्र हो उठती है, जो पराई पीर को अपनी पीर समझे, पराये दु ख में जिसकी आँखें भींग उठें वही मनुष्य है, राजन् !

अभिशप्त नारी सौन्दर्य

उज्जयिनी के विशाल दुर्ग के वैभव और विलास में आकण्ठ निमग्न रंगभवन में सहस्रों घृतपूरित स्वर्णिम दीपिकाएं प्रज्वलित थीं। मुक्ता माणिक्य आदि विविध-वर्णी मणियों से खचित कक्ष की भित्तियों की कान्ति कनकमय प्रदीपों की प्रभा से सम्मिश्रित होकर और भी नयनाभिराम हो उठी थी। कक्ष की पूर्व दिशा में एक ओर स्वर्ण-निर्मित मयूराकृति सिंहासन रखा हुआ था। पार्श्व में कञ्चनपीठ पर मद्य-कलश के समीप ही स्वर्ण और कांच के चषक रखे हुए थे।

रत्नजटित स्वर्ण-सिंहासन पर उज्जयिनीपति दर्पण गन्धर्वसेन एक महार्घ उपधान पर पृष्ठभाग टिकाये हुए आसीन था। मद्य और वासना के व्यसन ने मुख की नृपोचित कान्ति निस्तेज कर दी थी। नेत्रों से विलासिता और विद्रूपता झांक रही थी। कक्ष द्वार पर नग्न-खड्ग धारण किये दो प्रतिहारी सतर्कता से अपना कर्तव्य का पालन कर रहे थे। कक्ष के भीतर स्वल्पवसना युवतियां गन्धर्वराज की सेवा में नियुक्त थीं।

सहसा क्षीण-ध्वनि के साथ शयन-कक्ष का गुप्त द्वार खुला। दो बलिष्ठ सैनिकों ने अप्रतिम लावण्यमयी नारी-मूर्ति के साथ प्रवेश किया। सौन्दर्य की साक्षात् प्रतिमा को अपने समक्ष देखकर कामना-पूर्ति की अवश्यंभाविता के हर्ष में गंधर्वराज की आंखों में सुखद कल्पनाएं तैरने लगीं। मुख पर मन्द-स्मिति स्वत: फूट पड़ी। राजा ने दासी-युवतियों की ओर दृष्टिपात किया। राज-प्रासाद के नियमों से परिचित युवतियां राजा का संकेत समझ शीघ्रता से चली गयीं। नृपति दर्पण ने अपने कण्ठ में सुशोभित मुक्ता-निर्मित चन्द्रोज्ज्वल हार सैनिकों की ओर उछाल दिया। सैनिकों ने अभिवादन कर प्रस्थान किया। द्वार स्वत: ही बन्द हो गया।

कक्ष में रह गयी आगन्तुक युवती और गन्धर्वराज। गन्धर्वराज ने अपनी वाणी को संयत करते हुए कहा - 'सरस्वती'।

युवती का अश्रुस्नात मुख ऊपर उठा, नयनों में नीर रुक न सका। कपोल फिर भीग गये। युवती मौन थी, मौन रही।

सरस्वती साध्वीवेशोचित मात्र एक शाटिका में अपनी सौन्दर्यनिधि

छिपाये हुये थी । गौर देहयष्टि, धवल शाटिका, रक्तिम कपोल, लालिमायुक्त अधरोष्ठ शान्त गम्भीर व तेजस्वी मुखमण्डल !

संयम और साधना की निरन्तर पहरेदारी में रहने के कारण युवा आयु में ही मुखाकृति से गम्भीरता टपक रही थी । श्वासों का स्पन्दन यदि वस्त्रों पर दृष्टिगोचर न होता तो दुर्लभ शिल्पीकृत प्रस्तर-प्रतिमा का भ्रम उत्पन्न हो जाता । सरस्वती के सौन्दर्य की कीर्ति लोक में व्याप्त हो चुकी थी ।

गन्धर्वराज ने पुन: कोमल स्वर में युवती को सम्बोधित किया— "सरस्वती" । सरस्वती ने मुख ऊपर किया, प्रत्युत्तर में विवशता के अश्रु-बिन्दु ढुलक पड़े । अधरों से अस्फुट स्वर निकला —'राजन्' ! ऐसा लगा मानो सातों स्वरो में सबसे मधुर स्वर ध्वनित हो वातावरण में विलीन हो गया हो..... फिर वही मौन और नीरवता का निविड़ साम्राज्य ।

गन्धर्वराज ने अनुनय के स्वर में कहा—

'सरस्वती । कितने सन्देश भेजे, प्रयत्न किये, पर सब विफल । देवी ने अर्घ्य चढ़ाने का अवसर ही नहीं दिया । हृदय से विवश था । देवी इस धृष्टता को क्षमा करें ।

शोकमग्ना सरस्वती की संयत स्वरलहरी करुण रागिनी के रूप में गुञ्जित हुई । बोली - राजन् ! मुझे अपने अप्रतिम सौन्दर्य का बोध है । युग के श्रेष्ठ शिल्पी भी मिलकर अपनी सर्वगामी कल्पना से मेरे सदृश सौन्दर्य-प्रतिमा नहीं गढ़ सकते उनकी छैनियों में वह तराश कहाँ? जो प्रकृति को सहज ही प्राप्त है, पर राजन् ! सर्वज्ञ महावीर ने सिद्धांतों की शीतल और सुखद छाया में वर्षों से इच्छाओं का निरोध किया है । श्वासों की क्षण-भंगुरता को पहिचाना है । निर्वाण के शाश्वत पथ पर प्रतिक्षण चरण बढ़ाये हैं और बढ़ाने को लालायित हूं । 'अरहंतशरणं पव्वज्जामि' के पावन उच्चारण से जिह्वा को पवित्र किया है । वासना मर चुकी है । वर्षों से हृदय-द्वार पर दस्तक देने का भी साहस नहीं कर सकी है । देह निरी माटी-सी लगती है, इसका पोषण व्यर्थ है, पर प्रकृति को क्या कहूँ ? आयु को क्या दोष दूँ ? सौन्दर्य प्रतिक्षण निखर रहा है, किन्तु; राजन् ! मेरी दृष्टि रूप के वर्तमान पर नहीं है, भविष्य पर है, जब यह नश्वरता को प्राप्त होगा और एक दिन राख के ढेर के रूप अशेष रह जायेगा ।

उज्जयिनीपति ने वासनामिश्रित स्वर में कहा—

"यह सौन्दर्य मठों और विहारों में नष्ट करने की वस्तु नहीं है, तपस्या द्वारा सुखाने योग्य नहीं है। कहाँ शिरीष-सा कोमल तन और कहाँ वह कठोर तपश्चरण ?"

सरस्वती की वाणी में कातरता बढ़ गयी। बोली—

"नारी के हृदय में जो समर्पण की भावना है वह कहाँ से लाऊँ? समर्पण की भावना के बिना प्राणहीन देह अथवा मिट्टी के खिलौने के अतिरिक्त कुछ नहीं। मैं अपना पथ चुन चुकी हूँ, गन्तव्य निर्धारित कर चुकी हूँ। राजन्! लौटने की अनुमति दें।"

उज्जयिनी नरेश ने निश्चयात्मक ढंग से उत्तर दिया—

"सब कुछ त्याग सकता हूँ, लौटा सकता हूँ, पर यह रूप-राशि, यह दुर्लभ सौन्दर्य-निधि धर्म के नीरस, शुष्क और कठोर सिद्धान्तों में नष्ट नहीं होने दूँगा।"

सरस्वती की वाणी की आर्द्रता लुप्त हो गयी। कातरता दृढ़ता में बदल गयी। सरस्वती का मुख असम्मान की गन्ध पा तमतमाने लगा।

"राजन्! वह अविवेक, वह मद्य, वह वासना की छाया में चली जाए, जिसे धर्म की छाया में जाना चाहिए जो महलों में, सभ्य समाज में प्रबंध रूप से पल रही है" कहते हुए सरस्वती ने एक रहस्यमयी दृष्टि राजा पर डाली। उस निश्छल और पावन दृष्टि का सामना करने का साहस उस नरेश में नहीं था, दृष्टि मिलते ही वह सिहर उठे। सरस्वती के साहस पर स्तब्ध रह गया। विवेक ने हृदय-द्वार को खटखटाया, जिसकी आवाज सुनकर चेतना चौंक पड़ी। एक क्षण को विवेक जागा, अन्तर्चक्षु खुले, पर जीवन-भर संचित संस्कार उनके हाथ को मद्य-चषक तक ले गया। एक ही घूँट में सारा मद्य कंठ के नीचे उतर गया। मद्य ने अपना प्रभाव दिखाना प्रारम्भ किया। स्वर में राजसी अभिमान जाग उठा। तेज वाणी में बोले—

"सरस्वती! गन्धर्वराज दर्पण के सबल-सशक्त बाहुओं में वह शक्ति है जो आर्यावर्त के किसी भी सौन्दर्य को सहज प्राप्त कर सकती है।"

सरस्वती ने संयम से तपे सहज स्वर में उत्तर दिया—

"राजन्। समस्त आर्यावर्त में प्रसिद्ध आपकी शक्ति का मुझे ज्ञान है। मैं यह भी जानती हूँ कि आर्यावर्त की असंख्य रूपसी प्रमदाएँ आपको पाकर स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करेंगी, पर. ...पर क्या आर्यावर्त की प्रजा कल यह नहीं कहेगी कि उज्जयिनी का शासक श्रमण संस्कृति के पुनीत मठ

से साध्वी का हरण कर सकता है ? बलात्कार कर सकता है ? उसकी मनुष्यता इतनी मर गई है कि जिन कलियों की रक्षा करना उसका कर्तव्य है उन्हें मसल सकता है। राजन् ! उज्जयिनी की सीमा से असुरक्षा के भय से एक के बाद एक श्रेष्ठि या रंक जिनके भवनों में जीर्ण कुटियों में सौन्दर्य पल रहा है, सौन्दर्य-सहित रात्रि के अन्धकार में राज्य की सीमा पार कर जायेंगे। उज्जयिनी राज्य संस्कृति और सौन्दर्य विहीन हो जायेगा। शक्ति और सम्पन्नता में अभय निहित है। राजन् ! कालकाचार्य की भगिनी को अभय प्रदान करें। कालकाचार्य की प्रतिष्ठा आर्यावर्त ही क्या आर्यावर्त के बाहर तक फैल चुकी है। उसकी सबल वाणी जब न्याय के लिये द्वार खटखटायेगी, तब क्या कहोगे ? नारी का सौन्दर्य युगों युगों से अभिशप्त है। राजन् दुर्भाग्य को आमन्त्रण न दें। राजन्! आज तक मैंने सर्वज्ञ प्रभु से भी कुछ नहीं मांगा। मेरी प्रथम और अन्तिम विनय स्वीकार करें। इस कुंवारे और साधना से स्वच्छ आंचल को कलंकित न करें।

सहसा एक दीप बुझा, एक प्रतिहारी ने 'जागते रहो' की आवाज लगाई। पर बुझे दिये का अनुसरण कर शेष दिये भी बुझ गये। कक्ष में गहन अन्धकार छा गया। गूंजती रही नारी की केवल चीत्कारें और फिर सिसकियाँ, जो युगों-युगों से आज तक सुनी जाती रही हैं।

उज्जयिनी के रंगभवन में प्राची की किरणों ने रंगमहल में बने वातायनों के रन्ध्रों से प्रवेश किया। रंगमहल के संगमरमर के जटित कुट्टिम पर सरस्वती पैरों से मुंह छिपाये बैठी हुई थी। प्रातः की स्वर्णिम किरणों का स्पर्श पाकर चौंक उठी। प्रतिदिन प्रातः सरस्वती के मधुर कंठ से निकले श्लोकों, भक्ति-गीतों से उद्यान गूंज उठता था पर आज उसका स्वर अवरुद्ध था। मन विचार-वीथियों में आन्दोलित हो रहा था। वह सोच रही थी वर्षों का तप, वर्षों की साधना नारी के सौन्दर्य की पावन प्रतिमा खण्डित हो चुकी है। इसे जोड़ा नहीं जा सकता, इसकी पूजा नहीं की जा सकती। इसकी प्राण-प्रतिष्ठा नहीं की जा सकती। नारी की इस खण्डित प्रतिमा के सहारे लम्बी जिन्दगी कैसे कटेगी। रोने से क्या होगा? रोने से दुःख घटता तो रोने के बाद दुःख शेष नहीं रहता। आंसुओं को रोने के बाद सूख जाना चाहिये पर जितने आंसू बिखर रहे हैं दुःख उतना ही बढ़ रहा है।.....पर ऐसी स्थिति

में नारी करेगी क्या ? ....कालकाचार्य की भगिनी ने परिस्थितियों से समझौता करना सीखा नहीं है। .. ..देह तो नष्ट हो गई अब सरस्वती के पास हैं भावनाएं,पवित्र भावनाएं जो नारी-जाति के पास सबसे बड़ी धरोहर

है, जिनके सहारे वह जीती है और कभी इन्हीं भावनाओं के कारण मृत्यु को आमंत्रित करती है। भक्ति संगीत सुनने के अभ्यस्त कान, सुन्दरियों के श्रृंगार भरे गीत और नूपुर की झंकार कैसे सुन सकेंगे। परमात्मा-आत्मा की शुद्धतम अवस्था से विभूषित प्रभु को स्वामी कहने वाली यह जिह्वा गर्द्धभिल्ल जैसे निकृष्ट और वासना के पुजारी को स्वामी कैसे कह सकेगी ? जिन आंखों ने वीतरागी प्रभु के चिन्तन में वर्ष बिताये हैं, वर्षों से उनकी छवि को अनवरत निहारा है उनसा संवरने और निखरने का संकल्प किया है, मेरे ये नयन क्या बाह्य सौन्दर्य को स्वीकार कर सकेंगे? ...नहीं......नहीं......! सरस्वती विपरीत परिस्थितियों से समझौता करना तेरा स्वभाव नहीं। तू समझौता नहीं कर सकेगी। हे मृत्यु! आ और इस पापिष्ठा को अपने अंक में स्थान दे जिससे पुनर्जन्म प्राप्त कर पुनः अपने पथ पर बढ़ सकूं, गन्तव्य को पा सकूं।

सहसा दासी ने कक्ष में प्रवेश किया।

"देवी प्रभात हो रहा है।"

"गर्द्धभिल्ल के राज्य में प्रभात होता ही कब है।"

'देवि। क्रुद्ध न हों। मेरे स्वामी अत्यन्त कृपालु हैं। आपको कोई कष्ट न होगा।'

अच्छा। मद्य में मत्त तेरे स्वामी को दूसरे के सुख दुःख का भी बोध होता है ?

'देवि ! क्षमा करें। क्रोधित न हों, मैं तो आपके स्नान, श्रृंगार और स्वल्पाहार के सम्बन्ध में आदेश लेने आई हूं। महाराज को भी जगाती हूं।'

'अपने सम्राट को सोने दे। पापी जितनी देर सोता रहे उतना ही जगत् का कल्याण होता है।'

दासी ने घबराहट में कहा—

'सम्राट ने सुन लिया तो ....'

सरस्वती ने वाक्य पूरा कर दिया—

'तो मृत्युदण्ड देंगे। काल-कोठरी में बन्द कर देंगे अथवा राजप्रासाद से निर्वासित कर देंगे। यह तीनों स्थितियां इस नरक से सुखकर होंगी। तुम मेरी चिन्ता न करो।'

इतने में सम्राट की नींद खुली। सरस्वती का अभिवादन कर बोले— देवि! शुभप्रातः। बात को आगे बढ़ाते हुये बोले —

देवि ! पाप को किसने देखा है, पुण्य को किसने देखा है ? जिनके शरीर में सम्पत्ति उपार्जित करने की शक्ति न थी और हृदय में संकल्प का अभाव था उनमें भोगों को भोगने की सामर्थ्य ही न थी। उन्होंने संसार से विरक्त होने का भ्रामक उपदेश दिया। सन्यस्त जीवन का भ्रमजाल फैलाया। पाप–पुण्य की व्याख्या की और धर्म के नाम पर पंगु मनुष्य को पशु बना दिया। नेत्र-सौन्दर्य-पान और शरीर भोगने के लिए बना है। पूर्वजन्म नहीं होता। मृत्यु पर सब अशेष हो जाता है। यदि पूर्व जन्म होता तो प्रत्येक को अपने पूर्व जन्म का स्मरण होता। विगत जीवन की सुधि होती, सुख दु:ख की स्मृतियाँ होतीं; पर मनुष्य के पास पूर्वजन्म की कोई स्मृति नहीं—सुख दु:ख की कोई अनुभूति नहीं। वर्तमान में आँखों के सामने बिखरे सुखों को समेटने का नाम जीवन है। अतीत का विचार व्यर्थ है। भविष्य एक अनिश्चित सम्भावना है।

सरस्वती ने कहा—

धर्म आस्था से जन्म लेता है और श्रद्धा से पल्लवित होता है। राजन् तर्क से स्वार्थसिद्धि के प्रमाण प्रस्तुत किये जा सकते हैं किन्तु सत्य को परिवर्तित नहीं किया जा सकता। तुम्हारे तर्क को सत्य का सम्बल प्राप्त नहीं है। राजन् जन-जन के अधरों पर वर्द्धमान महावीर की स्मृति सजीव है। कितनी सुन्दर देह थी महावीर की ? कितनी असीम सम्पदा थी ? क्या रूपसी युवतियाँ उन्हें उपलब्ध नहीं हो सकती थीं, पर रूप की डोर से वे बँधे नहीं, नारी की चितवन में झाँका नहीं और तीस वर्ष की युवावस्था में सभी सुखों का परित्याग कर दिया। उसी काल में महात्मा बुद्ध भी संसार के सुखों को असार जानकर विह्वल हो उठे। रूपसी यशोधरा का परित्याग कर दिया। पुत्र राहुल की ओर से दृष्टि फेर ली, सुखों को त्याग दिया।

राजन् कभी सोचा भी कौन सी गन्ध थी, कौन सी उपलब्धि थी जिसके, पीछे बुद्ध और भगवान महावीर विह्वल हो उठे थे। पराई पीर को अपनी पीर समझने वाली दृष्टि कहाँ से लाओगे राजन् ? अपनी पीड़ा से तो पशु भी कराह लेते हैं. अपने दु:खो में तो सबकी आँखें आर्द्र हो उठती हैं, जो पराई पीर को अपनी पीर समझे, पराये दु:ख मे जिसकी आँखें भीग उठें, वही मनुष्य है राजन् ! सरस्वती की आवेश से साँस फूल उठी, वह फिर बोली—

"वायु को कभी चक्षुओं से देखा है, सुगन्धि को पकड़ा है ? विविध मीठे फलो और मिष्ठान्न के मधुर आस्वाद के अन्तर को क्या शब्दों में अभि-

व्यक्त किया जा सकता है। इसी प्रकार आत्मा अरूपी है और उसे आँखों से देखने का प्रयत्न और पुरुषार्थ व्यर्थ है राजन्। सुरा की मादकता में, सुन्दरियों के नूपुरों की झंकारों के बीच उसकी अनुभूति की कल्पना भी व्यर्थ है। पूर्व जन्म के सुख-दुःख की अनुभूति की स्मृति मस्तिष्क में शेष नहीं; इसका अर्थ यह नहीं कि न पूर्व जन्म था न उसमें सुख दुःख थे। वर्तमान जीवन में जो आँख से देखा शरीर से भोगा क्या वह याद है राजन्? भूले हुये शत्रु समय पर प्रतिशोध लेते हैं। उपकृत व्यक्ति समय पर साथ देते हैं। इसी प्रकार पूर्व अर्जित शुभाशुभ कर्म भी प्राणी के शत्रु-मित्र हैं। इन्द्रिय के सुख कितने अस्थिर हैं? भोगो......भोगो... ..फिर भोगो......पर तृप्ति कहाँ? जन्म है तो मृत्यु भी, दुख है तो सुख भी, इसी प्रकार राजन् जब नश्वर सुख है तो शाश्वत सुख भी होगा। जिस दिशा में तुम्हारा प्रथम पग भी नहीं बढ़ा, उस गन्तव्य की बात रहने दो राजन्।"

गर्दभिल्ल विस्मय-विमुग्ध दृष्टि से सरस्वती को देखते रह गये। रूप यौवन के साथ-साथ असीम ज्ञान की त्रिवेणी .....। वे सोचते रहे, ऐसा क्या है जो इस नारी के पास नहीं है।

गर्दभिल्ल ने दासी की ओर देखकर कहा—

"देवी को श्रृंगार कराओ फिर जलपान ले आओ।"

सरस्वती ने कहा—"बिना श्रृंगार के यह रूप यह यौवन कहाँ से कहाँ ले आया! श्रृंगार से और भी दुर्भाग्य बढ़ेगा। जा रहने दे।"

गर्दभिल्ल ने सरस्वती को समझाते हुये कहा—

"सरस्वती। इन विरक्त भावनाओं को संजोए हुये लम्बा जीवन कैसे बीतेगा?"

"राजन्! जीवन बिताने के लिए कोई पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता।

पात्र में एक छोटा सा छिद्र भर हो जाए, पात्र स्वयं ही रीत जाता है। घाट' उतरने के लिए क्या प्रयत्न करना पड़ता है। पाँव स्वयं ही नीचे की ओर भागते हैं, किन्तु जब चढ़ाई चढ़नी पड़ती है तब श्वास भर आती है, एक-एक कदम ऊपर की ओर रखना कठिन हो जाता है। जीवन का श्रृंगार बहुत कठिन है राजन्। सतत त्याग, तप और संयम की पहरेदारी में रहना पड़ता है। इच्छाओं के निरोध से जीवन को तपाना पड़ता है।

राजन्! मेरे जीवन के प्रति जो करुणा आपके हृदय में जन्मी है, आपके हृदय में जो आर्द्रता आई है, वाणी में कोमलता जन्मी है, वह आपके

हृदय परिवर्तन का संकेत नहीं है। मेरे रूप, मेरे सौन्दर्य का अदृश्य प्रभाव आपके हृदय, आपके मस्तिष्क में समाहित हो गया है। जिस दिन रूप पुष्प की पंखुरियाँ सूखने लगेंगी पराग के झरते ही आपका स्नेह स्वयं ही विलीन हो जायेगा।

× × ×

वर्ष बीत गये, सरस्वती ने मृत्यु के लिए अनेक प्रयत्न किये, पर असफल रही। और एक दिन ऐसा आया कि मरने की कामना को भी मारना पड़ा। मातृत्व ने उसके हृदय में वात्सल्य को जन्म दिया, मृत्यु की कामना करने वाला हृदय भी अनजाने में मीठी लोरियाँ गुनगुनाने लगा। अंग-अंग में विचित्र सी अनुभूति भर आई। उसके हाथ थपकियाँ देने और अधर लोरियाँ गाने बरबस व्याकुल हो उठे। यह मातृत्व की माँग थी और नारी की असमर्थता! मातृत्व एक दिन सफल हुआ। सरस्वती ने एक स्वस्थ और सुन्दर बालक को जन्म दिया। सरस्वती कभी मृत्यु की कामना करती और कभी जीने की। वह एक उलझनभरी जिन्दगी जी रही थी।

सरस्वती की विशिष्ट प्रतिभा और संकल्प के धनी भ्राता कालकाचार्य मौन नहीं बैठे, शकपति की सहायता से उन्होंने अवन्ती पर आक्रमण किया। विलासिता की क्रोड़ में क्रीड़ा करने वाले गर्दभिल्ल ने भी युद्धस्थल में क्षत्रियोचित पराक्रम का प्रदर्शन किया, किन्तु अन्त में उसके हाथों से खड्ग छिटक कर दूर जा गिरा। वह बन्दी बना लिया गया।

कालकाचार्य ने एक दुर्भाग्य को दूर करने के लिए दूसरे दुर्भाग्य को आमन्त्रित किया। पहले बलात्कार, अनीति, अत्याचार की घटनाएँ यदा-कदा होती थी, अब वे शकों के जीवन का अंग बन गईं। शकों के साथ ही उज्जयिनी राज्य पर दुर्भाग्य ने आधिपत्य कर लिया। कालकाचार्य पीड़ा से कराह उठे, सरस्वती आँसुओं में डूब गई। एक दिन कालकाचार्य से सरस्वती ने कहा—

"एक सतीत्व के प्रतिशोध की अग्नि में प्रतिदिन अनेकों सतीत्व जल रहे हैं। भारतीय संस्कृति में अनेकों संस्कृतियाँ समाहित हैं। जिस देश की माटी की सौंधी गन्ध, उर्वरापन, संस्कृति की गरिमा विश्व को ज्ञान-दान देती रही है, उस देश के हृदय मध्य-उज्जयिनी पर विदेशी शासन? कालान्तर में विदेशी कुसंस्कार हमारी संस्कृति को डस लेंगे, तीर्थंकरों के जयघोष, राम-सीता की पुनीत गाथाएं, वेदों के मन्त्र, अरहंत शरणं पव्वज्जामि जैसे पावन

उच्चारण अधरों तक आना कठिन हो जायगा । यह क्या किया भैया ! एक रक्त-मांस की सरस्वती के पीछे भारत की सरस्वती, भारत की आत्मा को आततायियों के हाथों बन्धक रख दिया ! इतिहास क्या कहेगा ? कालकाचार्य जैसे महान् तपस्वी, श्रमण संस्कृति केवल उपासक का कथानक किन शब्दों में अंकित किया जायगा और इस बीभत्स कथानक की नायिका बनेगी सरस्वती !

कालकाचार्य का समत्व का सतत् अभ्यास व्यर्थ हो गया । सूखी आँखों में छोटी-छोटी बूँदें छलक आईं । आचार्य ने पीड़ामिश्रित वाणी में कहा—

"भगिनी जिस दुःख से दुखित है, भ्राता भी उसी पीड़ा में डूबा हुआ है । भगिनी मेरी तपस्या व्यर्थ हो चुकी है, मेरा हृदय कूटनीति के कुछ नए जाल बुन रहा है, जिसमें शकपति फँस जाये । देश की आत्मा को मुक्ति मिले । आत्म-साधना पीछे-राष्ट्र पहले, देश की आत्मा मेरी आत्मा है, धर्म की आत्मा है । परतन्त्र देश का कोई धर्म नहीं होता, जिस देश की माटी ऋण में हो, आत्मा बन्धन में-उस देश के वासियों की धर्मसाधना प्रवञ्चना मात्र है । भगिनी ! कालकाचार्य अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक है ।

सहसा पवन का एक झोंका आया और एक केशरिया चीवर का भाग कालकाचार्य एवं सरस्वती के बदन से आ टकराया, सहसा दोनों चौंक पड़े । पीछे मुड़कर देखा । एक तेजस्वी युवक खड़ा था । केशरिया चीवर से उसका बदन ढका था । विशाल वक्ष मांसल भुजाएँ, लम्बा कद, मुखाकृति से गंभीरता झलक रही थी । उसके शरीर की सुदृढ़ता और सुन्दरता अनुपम थी । वह शांत और गंभीर स्वर में बोला—

"माँ ! पुत्र से अधिक तुम्हारी पीड़ा को कौन पहचानेगा । तुम्हारे आँसुओं की भाषा का अर्थ समझता हूँ । तुम्हारे पावन-नयनों में तैरती हुई पीड़ा के लगभग सभी पृष्ठों को पढ़ चुका हूँ । माँ ! तुम्हारा जीवनसर्वस्व के चरणों में समर्पित जीवन है । विश्वास रखो । आने वाला युग तुम्हें शकों के अत्याचारों से मुक्तिदाता की माँ के रूप में स्मरण करेगा, पूजेगा । अपने पुत्र पर विश्वास रखो ।" इसके पूर्व कि कालकाचार्य अथवा सरस्वती कुछ कहे, युवक उत्तर की प्रतीक्षा के बिना चला गया ।

× × ×

इस घटना को छह माह बीत गये । शकों के अत्याचार दिन-प्रतिदिन, क्षण-प्रतिक्षण बढ़े । रूपसी नारियों का अवन्ती की वीथिकाओं में निकलना

दुष्कर हो गया । शकपति के कर्मचारियों की अशिष्टता सीमा पार कर चुकी थी । वीथिकाओं, हाट-मेलों में सम्भ्रान्त महिलाओं के घूंघट खींचना आम बात हो गई थी । बलात्कार अपहरण, चोरी की घटनाएँ सामान्य जीवन का अंग बन गई थी । भूतपूर्व सेना के विशिष्ट सैनिकों सामन्तों आदि के समस्त पद शकों के हाथ चले गये थे । बड़े-बडे योद्धाओं की तलवारें म्यानों में जंग खा रहीं थीं । श्रेष्ठियों की प्रतिष्ठा समाप्त हो चुकी थी । राज-दरबार में उत्सवों में शकपति को भेंट करने पर ही भूतपूर्व श्रेष्ठियों और सामन्तों को प्रवेश की पात्रता प्राप्त थी । कला-केन्द्र नाट्यगृह बन्द पड़े थे । मन्दिरों के घंटों, अर्चना-पूजा के छन्दों व श्लोकों की आवाज घुटने लगी थी !

देश की पीड़ा को एक युवक ने पहचाना । श्रेष्ठियों से धन मांगा । पदच्युत सैनिकों, सामन्तों की तलवारों की जंग साफ कराई, युवा पीढ़ी को साथ लिया, अस्त्र शस्त्रों से सज्जित किया, गहन वनों में सैनिक उपनिवेश स्थापित किये और उज्जयिनी पर आक्रमण कर दिया । शकपति ने उज्जयिनी राज्य की सीमा को पूर्णत: सुरक्षित कर रखा था, उसे कल्पना भी नहीं थी कि इस भांति उज्जयिनी पर कोई आक्रमण करेगा । सज्जित सेना ने जिस समय नगर में प्रवेश किया, चकित और भीत से स्त्री पुरुष बाजारों और वीथिकाओं को छोड़कर भागने लगे । सैनिकों ने किसी वस्तु का स्पर्श नहीं किया, महिलाओं पर दृष्टिपात नहीं किया । सेना के विशिष्ट अधिकारी सावधान करते चले आ रहे थे । उज्जयिनी का कोई भी नागरिक भयभीत न हो । महिलाएं हमारी मां बहिनें हैं । उज्जयिनी के नागरिक शकपति से मुक्ति-आन्दोलन में हमारा साथ दें ।

विद्रोहियों का युवा नेता दुर्ग के समस्त रहस्यों से शकपति से भी अधिक परिचित था, जिन्हें शकपति वर्षों तक राज्य करने के उपरान्त भी न जान पाये थे । एक विद्रोही टुकड़ी ने गुप्त मार्ग से दुर्ग में प्रवेश किया और सहसा दुर्ग का विशाल मुख्य द्वार चरमराकर खुल गया । जय वर्द्धमान, जय महावीर, जय ऋषभ, जय महाकाल, जय मालव का जयघोष करती हुई विद्रोही सेना ने दुर्ग में प्रवेश किया ।

प्रतिशोध या आत्मरक्षा हेतु नग्न खड्ग लिए शकपति दुर्ग रक्षकों के साथ खड़े थ । मालव की मुक्तिवाहिनी सेना ने शकपति पर वार करना चाहा, किन्तु एक तेज स्वर सुनाई दिया ।

"ठहरो !"

अपने स्वामी का सम्बोधन सुन सैनिक स्तब्ध रह गये। विद्युत गति से एक युवा खड्ग लिए शकपति के आगे आ खड़ा हुआ और बोला —

"प्रथम वार तुम्हारा!"

शकपति सुदृढ़ तथा अद्भुत सौन्दर्यमय शरीर को देखकर चौंक पड़े और बोले—

"कौन हो ?"

युवक ने कहा—"युद्ध में परिचय से प्रयोजन ?"

शकपति ने कहा—

"एक वीर दूसरे वीर के परिचय का अधिकारी है।"

युवक ने अट्टहास किया —

"शकपति और वीर ! फिर भी कुछ क्षणों के शासक को अपना परिचय दिये देता हूँ साध्वी-सरस्वती-पुत्र विक्रम, वार करो शकपति !

शकपति युवक के अट्टहास से उत्तेजित हो उठे और सम्पूर्ण शक्ति से शकपति ने विक्रम पर वार किया विक्रम सावधान था। खड्ग खड्ग से टकराई और शकपति की खड्ग मध्य से कटकर झनझनाती हुई दूर जा गिरी। विक्रम ने कहा —

'शकपति सावधान !'

और शकपति का शीश एक बार में ही भूमि पर लोटता दिखाई पड़ा। जय विक्रम, जयमालव के निनाद से विशाल दुर्ग प्रतिध्वनित हो उठा। शेष शक सैनिक बन्दी बना लिये गये।

× × ×

जनता का विश्वास था कि विक्रमादित्य एक अलौकिक पुरुष है। अन्धकारमयी रात्रि में जब प्रजा सुख से सोती है, तब वह जागता है। किस वेश में किस समय किसे दर्शन दे जायं ज्ञात नहीं। चोरी के अपराध में चोर को पीछे और सेवारत कर्मचारी को प्रथम दण्डित किया जाता था। कुछ समय में ही चोरी की घटनाएँ लोगों के लिये अश्रुतपूर्व हो गईं। लोग घरों में ताले नहीं डालते थे। विक्रमादित्य ने ऐसा शासन प्रदान किया कि अत्याचार और बलात्कार अतीत की मात्र कहानियों में शेष रह गय। खेत लहलहा उठे। निःशुल्क बीज वितरण, भूमि पर किसी प्रकार का कर नहीं। सम्पूर्ण राज्य में सुख-शांति, सुव्यवस्था व्याप्त थी। महाकाल के मन्दिर में हर हर महादेव

ग्रौर जिन देवालय में अरहंत शरणं पव्वजामि, गीतों ग्रौर आरती के मधुर स्वर गूंजने लगे।

विक्रमादित्य की गाथाएँ श्रुत के ग्राधार पर जन्मी, लोकगीतों ग्रौर ग्राख्यानों में पली। लोरियों में आदर मिला, युगों-युगों तक माताएँ ग्रपने शिशुओं को वीर विक्रमादित्य की गाथाएँ लोरियों में सुना-सुना कर पालती रहीं। विक्रमादित्य के बाद भारत की पवित्र भूमि में अनेकों वीर राजाग्रों ने विक्रमादित्य को पदवी के रूप में ग्रपने नाम के साथ सुशोभित किया। एक के बाद एक राजा ग्रपने नाम के साथ विक्रमादित्य का पदवी के रूप में प्रयोग करते रहे, कि मालवपति वीर विक्रमादित्य के अस्तित्व ग्रौर जीवन के प्रसंगों का खोजना कठिन हो गया।

श्रमण संस्कृति की महान् साध्वी सरस्वती का पुत्र वीर विक्रमादित्य जिसके ऋण से यह भूमि मुक्त नहीं हो सकती, उसका इतिहास ग्रतीत की गोद में विलीन हो गया कीर्ति स्मारक नष्ट हो गये, पर ग्राज भी मालव-पति श्रमण संस्कृति के उपासक की स्मृति कथाग्रों में, लोकगीतों में, विक्रम संवत् के रूप में शेष है जो अतीत में झांकने और वैभव देखने के लिए ग्रद्‌भुत अनुपम क्षण प्रदान करती है।

—❖—

"कार्तिकेय के जन्म की दुर्गन्ध उनके सुकर्म और सद्ज्ञान की सुवास में अस्तित्वहीन हो गई। अब कार्तिकेय जहाँ भी जाते उनकी कीर्ति पहले और कार्तिकेय बाद में पहुँचते। लोक-वाणी कह रही थी, "कार्तिकेय एक युग है!"

कुसंस्कारों के प्रति स्पष्ट विद्रोह है। जन्मजात संस्कारों पर सत्कर्मों की विजय का प्रतीक है। कार्तिकेय को पा वसुधा धन्य हो गई। युग निहाल हो उठा और कार्तिकेय जीवन की संध्या और मुक्ति के प्रकाश की ओर बढ़े चले जा रहे थे।"

सीप का मोती : कीच का कमल

कुमार कार्तिकेय एक गगनचुम्बी वृक्ष की एक लहराती हुई शाखा पर लगे एक सुकोमल पल्लव को वाण से भेदने की प्रतिस्पर्धा में अपने किशोर मित्रों सहित व्यस्त थे । प्रथम लक्ष्यभेद कुमार को ही करना था, कुमार कार्तिकेय ने (प्रभु राम का स्मरण कर) वाण छोड़ा । पवन का एक तीव्र झोंका आया, सुकोमल शाखा पल्लव सहित स्थान से दूर चली गई, और कार्तिकेय का लक्ष्यभेद असफल रहा । तभी एक सामन्तपुत्र रिपुदमन ने व्यंग किया—

'हर सीप में मोती नहीं पलते ।

हर कीच में कमल नहीं खिलते ।।"

शब्द वहुत धीरे से कहे गये थे पर कार्तिकेय व्यंग्य सुनकर स्तब्ध रह गये । बोले—क्या कहा रिपुदमन रिपुदमन ? को अपनी भूल का ज्ञान हुआ । बोला—बन्धु कार्तिकेय ! मित्र का अपराध क्षमा करें । अनजाने में भूल हो गई । कार्तिकेय ने कहा—

"नहीं मेरे जीवन के पीछे कोई न कोई रहस्य है, क्या मेरे जन्म की गाथा किसी रहस्यमय घटनाक्रम से जुड़ी हुई है क्या तुम उसी अज्ञात रहस्य की ओर संकेत कर रहे हो ? अन्यथा इतना निर्मम व्यंग्य तुम नहीं कर सकते मित्र । मित्र से कुछ न छिपाओ ।"

रिपुदमन को अपनी भूल ज्ञात हुई । पश्चात्ताप के स्वर में बोला—

"मित्र कार्तिकेय इस बार अपराध क्षमा करो, भविष्य में ऐसी भूल नहीं होगी ।"

कार्तिकेय ने सत्य बताने के लिये आग्रह किया ।

रिपुदमन ने कहा—

"मैंने जो सुना है, मेरी वाणी कहने में असमर्थ है । सत्य क्या है, मुझे स्वयं ज्ञात नहीं है । कार्तिकेय ! तुम्हारे जीवन के सम्बन्ध में कोई रहस्य है, जिसे रानी माँ ही जानती है और सुनी सुनाई कथाओं के रूप में पूरा देश।"

कार्तिकेय इसके आगे सुन न सके । एकाएक अपने अश्व पर सवार होकर राजमहल की ओर चल दिये ।

संध्या सरकती समीप ग्रा रही थी। सूर्य ग्रस्ताचल की ग्रोर बढ़ रहा था। कार्तिकेय ने मन ही मन ग्रस्तंगत सूर्य को देखकर सोचा कि क्या इसके साथ ही मेरे सुख भी ग्रस्त होने वाले हैं।

कार्तिकेय ने रानी माँ के कक्ष में प्रवेश किया। रानी माँ मधुर स्वर में गुनगुना रही थी।

"मुझको मेरा विश्वास छला करता है।

माटी के तन में नेह गला करता है।।"

कार्तिकेय के एकाएक प्रवेश से गीत रुक गया। रानी माँ कुछ कहती इसके पूर्व ही कार्तिकेय ने कहा—

"माँ! मेरे पिता कौन हैं? मेरे जीवन का रहस्य क्या है?" पुत्र के प्रश्न ग्रौर दृढ़ता को देखकर रानी एक क्षण के लिये सम्भ्रमित हो गई। फिर ग्रपनी वाणी में सहजता लाकर बोली—

क्या हुग्रा पुत्र? यह तुम्हें ग्राज क्या हुग्रा?

कार्तिकेय ने कहा—

"कुछ नहीं माँ। यौवन की देहरी पर पाँव रखने के पूर्व ही लोकापवाद ने सावधान कर दिया। माँ ग्रपने पुत्र से सत्य कहो। मेरा जीवन किस रहस्य से ग्रावृत्त है, किस कलंक से मलिन है?"

रानी माँ के नयन भर ग्राये। स्नेहसिक्त वाणी में बोली—

पुत्र! यदि पुत्र का जीवन रहस्यमय है तो माँ का जीवन भी। यदि तेरा जीवन कलंक से जुड़ा है, तो मेरा भी। पुत्र शांत हो, बैठ, मैं ग्राज्ञा देती हूं, शांत हो।"

कार्तिकेय मौन हो गया। उत्सुक दृष्टि से माँ को देखने लगा।

रानी ने कार्तिकेय के ग्राँसू पोंछे ग्रौर कहा—

"पुत्र ग्राँसुग्रों से मेरा ग्राँचल इतना भींगा हुग्रा है कि मैं ग्रपने पुत्र के ग्राँसू पोंछने में भी ग्रसमर्थ हूँ। यह हँसी जो तू मेरे ग्रधरों पर देखता है, ग्रात्मवंचना है, दुःखों के ग्राच्छाद का प्रयास मात्र है। कार्तिकेय सुन, एक कहानी सुनाती हूँ, शंका मत करना, प्रश्न मत करना, बात उलझी हुई लगे तो सुलझाने का प्रयत्न मत करना। पुत्र! सुन!

ग्राज मैं तुझे ग्रभागिन नारी की कथा सुनाती हूँ। युगों-युगों से नारी के मख पर ऐसी कालिख किसी ने नहीं पोती होगी! ऐसी पाप ग्रौर वासना

भरी दृष्टि किसी पुरुष ने नारी पर नहीं डाली होगी । मेरी कथा की नायिका की देह अपवित्र आलिंगनों से कलंकित है । उसके अधरों पर, कपोलों पर ऐसे अपवित्र चुम्बन अंकित है कि पवित्र गंगा का जल, त्रिवेणी के संगम का पानी भी उसकी अपवित्र देह को धोकर निर्मल करने में असमर्थ है । उसने अपने जीवन की सोलह वर्ष की दीर्घ अवधि कैसे व्यतीत की, यह एक दुर्भाग्य-पूर्ण कहानी है । उसने अपने कानों से अपनी ही सिसकियों का इतने समीप मे निरन्तर सुना है कि संगीत के गूंजते स्वर, वाद्ययन्त्रों की ध्वनि रुदन और चीत्कार भरी लगती है । वह वर्तमान में एक वृहद् राज्य की पटरानी है, पर किसी अन्य रानी क्या, दासी के आगे भी आँख उठाने का साहस उसमें नहीं है । प्रकृति ने नारी को इतना रूप, इतना आकर्षण क्यों दिया, जो अभिशाप बन जाता है ।

मेरी कथा की नायिका की आयु जब केवल चौदह वर्ष की थी, कोमल पात सा तन, शंख सी ग्रीवा, चन्द्र सा मुख और स्वर लोग कहते थे कि कोयल का कंठ चुराकर उसकी ग्रीवा में बिठा दिया है । यही रूप, यही यौवन उसके दुर्भाग्य का कारण बन गया । उसके अनुपमेय सौन्दय को देखकर उसके पिता के मन में विकार का आविर्भाव हुआ । वे सोचने लगे वाटिका के पुष्पों पर माली का प्रथम अधिकार है । अपने भण्डार में संचित रत्नों का स्वामी संचयकर्त्ता होता है, फिर अपनी पुत्री पर भी मेरा प्रथम अधिकार है ।

राजा की घृणित भावनाएँ मूर्त रूप लेने को आतुर हो उठी । मन में अन्तर्द्वन्द चलता रहा । राजा का विवेक उसके मन की विकृति को धिक्कारता रहा । युगों-युगों से पिता-पुत्री के पावन सम्बन्ध को किसी ने कलंकित नहीं किया । प्रकृति ने मानव के हृदय में दुहिता के प्रति वासना का अंकुर ही नहीं रखा । ये कैसे संस्कार हैं, जो तुम्हें पथभ्रष्ट करने को अग्रसर हैं । कुछ समय तक वे अपनी कुत्सित किन्तु दुर्दमनीय भावनाओं का दमन करते रहे, परन्तु अन्त में हृदय के समक्ष विवश हो गये । और एक दिन राजसभा में राजा ने अपने सभासदों तथा धर्मगुरुओं के समक्ष अपने मन की विकृत पर्तों का उद्घाटन कर दिया । पूछने लगे—

"स्वयं के द्वारा आरोपित वृक्षों पर, उनके पुष्पों, उनकी कलियों पर सर्वप्रथम किसका अधिकार है ?"

सभी ने एक स्वर में कहा—उसका जिसने वृक्ष रोपे, कलियों को जन्म दिया ।

देवयोग से इस राजसभा में युवा जैन श्रमण भी उपस्थित थे, उन्होंने कहा, राजन् आपके धर्मगुरुओं ने सभासदों ने जो कहा— वह सत्य है किन्तु इस नियम का एक अपवाद है पुत्री। प्रकृति ने पिता-पुत्री के मध्य ऐसी पावन— भावनाओं को संजोकर रखा है कि उसका उपभोग एक जघन्यतम अपराध है। उसे प्रकृति, धर्म और सामाजिक परम्परा के अनुसार दूसरों को देना ही पड़ता है।

सामान्य व्यक्ति स्वार्थ के वशीभूत होकर समर्थ व्यक्ति के स्वर में अपना स्वर मिला देते हैं। राजा की मन:स्थिति से परिचित स्वार्थी और अर्थलोलुपी सभासद राजा की चाटुकारिता करने लगे और इस घृणित कृत्य के लिए जिसे संभवत: स्वयं उनका अन्त:करण भी स्वीकार नहीं कर रहा होगा, अपनी स्वीकृति दे दी। राजा तो ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में ही था।

बालिका का दुर्भाग्य जागा, राजा की दृष्टि बदली, उन्होंने पुत्री को केवल एक सौन्दर्यमयी नारी के रूप में देखा। राजा और पुत्री का पापयुक्त व्यवहार वर्षों चला। और एक रूपवान्, चरित्रवान्, साहसी बालक ने जन्म लिया। आज वह जीवन में प्रवेश करने जा रहा है और ...और······ और······कहते-कहते रानी माँ का कंठ अवरुद्ध हो गया। आँसू झर-झर झरने लगे। रुँधे कंठ से रानी माँ ने कहा उस युवक का नाम है—कार्तिकेय।

कार्तिकेय को लगा कि ये शब्द तीक्ष्ण और विषदग्ध तीर की भाँति उसके कर्णकुहरों के मार्ग से प्रविष्ट होकर मर्मस्थल को विदीर्ण कर रहे हैं। उसकी श्रवण-शक्ति इस कटु और अभीप्सित सत्य को और अधिक सुनने के लिए साथ नहीं दे रही थी। उसने अपने कानों को हाथों से ढँक लिया—और चीखते से स्वर में कहा—

"बस करो-बस करो माँ!"

उसे लगा सारा शरीर चेतना-शून्य हो रहा है। पैर अपने ही शरीर का भार सहन करने की और नेत्र मानों प्रकाश में देखने की सामर्थ्य खो बैठे हों। वह अपने अन्धकार पूर्ण विगत को हृदय में समेटे अन्धकार की ओर चरण बढ़ाने लगा। हृदय में अंधेरा, नेत्रों के आगे अंधेरा, भविष्य अन्धकारमय वातावरण में व्याप्त अंधकार······अंधकार का यह परिवेश उसे असह्य हो उठा।

कार्तिकेय राजपथ पर द्रुतगति से बढ़ता चला जा रहा था। राजपथ कब समाप्त हुआ, कब निर्जन पथ पर पहुँच गया, इसका उसे ध्यान ही नहीं

था। वह भागता रहा—भागता रहा। उसके कानों में बार-बार रानी माँ के शब्द गूँज रहे थे—और उस युवक का नाम है कार्तिकेय– (व्यभिचारज) कार्तिकेय। जब-जब उसके कानों में ये शब्द प्रतिध्वनित होते उसके भागने की गति बढ़ जाती। वह इन शब्दों को सुनना नहीं चाहता था, पर अपने आप से दूर कैसे भागा जा सकता है। आत्मा की आवाज आत्मा को सुनना ही पड़ती है। जब आत्मा-आत्मा की आवाज सुनना बन्द कर देती है, तो मनुष्य पशु बन जाता है। कुमार कार्तिकेय भागता रहा, उसके सुकोमल पाँव सूज गये। प्यास से कंठ सूख गया। मध्य रात्रि में निर्जन—वन में कुमार कार्तिकेय अचेत हो गये।

निर्जन—वन में चहचहाती चिड़ियों के मधुरगान और प्रातः की बाल—रश्मियों के स्पर्श ने कार्तिकेय को जगाया। थकान के कारण कार्तिकेय का अंग-अंग टूट रहा था। बड़ी कठिनाई से कार्तिकेय ने आँख खोली, उसे लगा कि वह एक स्वप्न देख रहा है। सघन-वन, सामने पर्वत—श्रृंखला, कलकल करती सरिता, पक्षियों का मधुर कलरव, वनफूलों की मधुर सुरभि प्रकृति के इस उन्मुक्त वैभव को पाकर उसका हृदय खिल उठा, किन्तु शीघ्र ही मन स्वाभाविक स्थिति में आ गया। क्षणिक आनन्द क्षण-भर में नष्ट हो गया। सन्ध्या में रानी माँ की बातें स्मृति-पटल पर छा गईं। उसने अपने आप से कहा—

"कार्तिकेय। मृत्यु की गोद को छोड़ तेरा कहीं स्थान नहीं है।" कल-कल करती सरिता की ओर ध्यान गया। कठिनता से वह सरिता के कूल तक पहुँचा। अंजुलि से भरकर उसने जल पिया। जल ने अमृत का काम किया। उसे नई शक्ति नया साहस मिला। वह सोचने लगा—कार्तिकेय मृत्यु एक अन्धकार है। मरने से क्या मुक्ति मिल जायेगी? मृत्यु के बाद क्या फिर जन्म नहीं होगा? मृत्यु के पश्चात् फिर जन्म ही लेना है तो वर्तमान—जीवन क्या बुरा है? मृत्यु बहुत सरल है, कठिन है जीना। कार्तिकेय खोज, कुछ ऐसा मार्ग खोज जहाँ जन्म की पीड़ा और मृत्यु का भय न हो। कीच में कमल खिलते हैं, दुखों में सुख को खोजने का सम्बल मिलता है। कार्तिकेय ने अपना पथ चुन लिया। वह सद्गुरु को खोजने निकला। जंगलों में काय—कलेश सहते हुए साधुओं से उसने सत्य-मार्ग प्रदर्शित करने की याचना की, किन्तु जहाँ-जहाँ जिन साधुओं के समीप वह पहुँचा— सभी ने पूछा—तुम्हारा परिचय? कार्तिकेय का नाम सुनते ही साधुओं के मुख से निकला—

"कार्तिकेय! ऐसा अपवित्र मनुष्य धर्म की दीक्षा पाने का अधिकारी नहीं हो सकता।"

कार्तिकेय मरना चाहता नहीं था। जीने का सम्बल मिल नहीं रहा था, उसने शांति की खोज में कई वर्ष बिता दिये।

देश के सुदूर छोर तक फैले हुए तीर्थस्थलों की यात्रा की, किन्तु कार्तिकेय को सच्ची शान्ति नहीं मिली। वह विचार करता—कीर्ति की अपेक्षा अपकीर्ति के पांवों की गति तीव्र है, जहाँ भी जाता हूँ, अपकीर्ति मुझसे पूर्व पहुँच जाती है। कार्तिकेय नाम का क्या महत्व है—जैसा कार्तिकेय वैसा अन्य कोई नाम। तेरे नाम के साथ अपकीर्ति जुड़ गई है। बदल डाल इसे—फिर साधुपद की दीक्षा में कोई बाधा नहीं, पर कार्तिकेय का अन्तर्द्वन्द घनीभूत हो उठा।

"व्यभिचार से उत्पन्न तन यदि जिह्वा को भी असत्य के रंग से रंग डालू, तो अभी जन्म से अपवित्र हूं फिर कर्म से भी अपवित्र हो जाऊंगा। नहीं नहीं! कार्तिकेय जीवन का सबसे बड़ा मन्त्र वही है, सत्य बोलो'। कार्तिकेय ने नहीं बदला। घूमते-घामते अयोध्या के वनों में पहुँचा।

समय न प्रभात का था न सन्ध्या का। सूर्य की किरणों में सबसे अधिक तपन थी। सूरज से तपे शिलाखण्ड पर एक श्रमण दिगम्बर वेश में पद्मासन लगाये बैठे थे। अभी जब भी उसने साधुओं को देखा था। ग्रीष्म में सघन तरुवर के तले और शीत में अग्नि जलाकर तप करते देखा था। उसकी आँखे विस्मय से श्रमण को देखती रहीं। श्रमण अविचल साधना में मग्न थे। दोपहरी ढली। दिगम्बर श्रमण से "ॐनमः सिद्धेभ्यः" कहकर समाधि भंग की और देखा सामने एक कान्तिवान् युवक धूल-धूसरित वस्त्र पहने खड़ा है। श्रमण श्री की समाधि टूटते ही कार्तिकेय ने कहा—"श्रमण के चरणों में कार्तिकेय का प्रणाम"

श्रमणश्री ने वात्सल्यभरी वाणी में कहा—

"आ गये वत्स कार्तिकेय।"

सुनकर एक क्षण कार्तिकेय को लगा – जैसे वे उसके आगमन की प्रतीक्षा में हों। दूसरे ही क्षण विचार बदला और उसे लगा कि कहीं अन्य साधुओं की तरह यहाँ भी निराशा हाथ न लगे। संभव है कि यह विलक्षण साधु भी उसे दुत्कार देगा, किन्तु वात्सल्यभरी वाणी सुनकर उसे प्रतीत हुआ कि इतने स्नेह से तो पहिले किसी ने भी नहीं पुकारा। इस श्रमण की वाणी में माँ की वात्सल्यभरी वाणी से भी अधिक स्नेह है। कार्तिकेय ने मन ही मन कहा—

"कार्तिकेय अपनी गाथा मत छिपा" । प्रकट में बोला–

"श्रमण श्री– मैं कार्तिकेय हूँ । व्यभिचार से उत्पन्न कार्तिकेय ।"

श्रमणजी ने उसी स्वर में कहा—वत्स! अप्रिय प्रसंगों की चर्चा करना निष्प्रयोजन है । कार्तिकेय मैं तेरे जन्म की कथा और हृदयकी व्यथा दोनों को जानता हूँ । जिस सभा ने पुत्री को पत्नी के रूप में ग्रहण करने का निर्णय लिया था, तब मेरी प्रारम्भिक साधक अवस्था थी । मैंने विरोध भी किया था वत्स । पर अनहोनी घटित हो चुकी है । प्रयोजन कहो ।"

कार्तिकेय का हृदय श्रमण के प्रति श्रद्धा से भर गया, उनका सम्बोधन बदल गया ।

"देव ! क्या ऐसे व्याभिचारोत्पन्न व्यक्ति को धर्म साधना का अधिकार प्राप्त है ?"

श्रमणश्री ने कहा "वत्स् । तेरा क्या अपराध ! तू स्वयं को न जन्म दे सकता और न स्वयं के जन्म को रोक सकता है । जिस अपराध का तू कर्ता नहीं, उसका भोक्ता कैसे हो सकता है? धर्म है किसलिये ? यदि धर्म अपावन को पावन न बनाये तो उसे धर्म कौन कहे । धर्म की शीतल छाया में सभी को धर्मसाधना का अधिकार प्राप्त है । व्यक्ति जन्म से नहीं कर्म से जाना जाता है ।

कार्तिकेय ने श्रमणश्री के चरण पकड़ लिए और कहा—

"देव । श्रीचरणों में आश्रय दें !

दीक्षा का प्रथम चरण प्रारम्भ हुआ । श्रमणश्री ने कहा—

"वत्स । एक माह तक आसपास के जंगलों में भ्रमण करो । झरनों की ध्वनि और कोयलों के गीत सुनो । वन के निरीह पशुओं से प्रीति करना सीखो । क्षुद्रतम पशु-पक्षी भी दुःखी हो तो उसकी सहायता करो । उपचार करो । हृदय में करुणा, वाणी में नम्रता और आचरण में दृढ़ता से आस्था के बीज अंकुरित होते हैं, आस्था के बिना धर्म में प्रवेश नहीं किया जा सकता । किन्तु वत्स ! ध्यान रहे आस्था को विवेक की डोर से बाँधे रखना । यही दीक्षा का प्रथम अध्याय है ।"

एक माह तक कार्तिकेय नदियों में तैरा, पर्वतों पर चढ़ा । प्रकृति के स्वच्छन्द वातावरण में उसका रूप और यौवन पूर्व से अधिक निखर गया । एक माह पश्चात् श्रमणजी ने कार्तिकेय से कहा –"क्या पढ़ा, पाठ सुनाओ ।

कार्तिकेय चौंक उठा—क्या उत्तर दूँ ? वह कुछ क्षण मौन रहा ।

श्रमणश्री ने कहा—"अच्छा वत्स। मैं प्रश्न करता हूँ, तुम उत्तर दो—वत्स ! प्रकृति का संगीत सुना ?"

'हाँ देव'

श्रमण—किसने सुना ?

कार्तिकेय—"मैंने सुना।"

श्रमण—"मैं कौन ?"

कार्तिकेय ने मन ही मन कहा 'कानों से' फिर उसने स्वयं ही कहा—'नहीं-नहीं' नहीं कान तो मृतक के भी होते हैं कान तो माध्यम हैं। सुनने वाला कोई और है। 'वह विचारों में डूब गया। श्रमणश्री ने उसकी विचार श्रृखला को भंग नहीं किया। वे मौन ही रहे। कार्तिकेय जितना सोचता उतना ही गहन चिन्तन में डूबता जा रहा था। 'मैं कौन' श्रमण से सुना समझा—बात हृदय के भीतर पहुँच चुकी है। उन्होंने कहा—

"वत्स तू आत्म है। ये जो इन्द्रियाँ हैं, यह जो देह है, नश्वर है। शाश्वत है मात्र आत्म। मोह की सांसारिक दीवार है, वह कच्ची भीत के समान है। तू आत्मा है, पर कर्मों से बंधी हुई, संस्कारों से जकड़ी हुई। जिस क्षण कर्म छूट जायेंगे, परमात्मा बन जायेगा। उचित समय पर श्रमणश्री ने कार्तिकेय को मुनिपद की दीक्षा दी। एक दिन शिष्य अयोध्या पधारे। अयोध्या में श्रमणश्री का मंगल प्रवचन हुआ। प्रवचन में श्रमणश्री ने कार्तिकेय का दृष्टान्त देकर जन्म की अपेक्षा कर्म की महत्ता बताई। गुरु-शिष्य फिर वन में लौट आये। कार्तिकेय का चेहरा क्रोध से तमतमा रहा था। निर्दिष्ट स्थान तक कार्तिकेय मौन रहा पर गन्तव्य पर पहुँच कर उसने कहा—

"गुरुदेव ! क्या प्रवचन में कार्तिकेय की कथा सुनाना आवश्यक था?"

श्रमणजी ने कहा—"कार्तिकेय साधुओं का प्रवचन सोद्देश्य होता है, निराश मत होना। तुम परीक्षा में असफल रहे। अभी भी तुम्हारा मन जन्म की वीभत्स क्या को हृदय पर लादे हुए है। वत्स ! अपना पाठ पुनः स्मरण करो। ज्ञान को ज्ञेय बनाओ। मैं शरीर नहीं आत्मा हूँ। इस पाठ को कंठस्थ कर आत्मा के अन्तराल में उतार। कार्तिकेय! जब तक तुम्हारी दृष्टि देह पर रहेगी आत्मकल्याण में असफल रहोगे।"

कार्तिकेय ने गुरुदेव के चरण पकड़ लिये। उसका कंठ अवरुद्ध हो गया।

इस घटना के उपरान्त कार्तिकेय का जीवन बदल गया। कार्तिकेय की उग्र तपस्या देखकर लोग कहते—कार्तिकेय ने इन्द्रियों को जीत लिया है।

कार्तिकेय इन्द्रियों के प्रति अत्यन्त निर्मम है। मुनि कार्तिकेय शीत में खुले आकाश के नीचे तपस्या करते। रात्रि में अल्पकाल के लिये एक करवट लेकर विश्राम करते। ग्रीष्म की दोपहरी में तप्त शिलाओं पर समाधि लगाते।

कार्तिकेय के जन्म की दुर्गन्ध उनके सुकर्म और सद्ज्ञान की सुवास में अस्तित्वहीन हो गई। अब कार्तिकेय जहाँ भी जाते, उनकी कीर्ति पहले और कार्तिकेय बाद में पहुँचते। लोकवाणी कह रही थी कार्तिकेय एक युग है। कुसंस्कारों के प्रति एक स्पष्ट विद्रोह है। जन्मजात संस्कारों पर सत्कर्मों की विजय का प्रतीक है। कार्तिकेय को पा वसुधा धन्य हो गई। युग निहाल हो उठा।

और कार्तिकेय जीवन की सन्ध्या और मुक्ति के प्रकाश की ओर बढ़े चले जा रहे थे।

"साध्वी मृगावती ने प्रद्योत पर एक दृष्टि डाली और उसके मस्तक पर हाथ रखकर कहा,

"बन्धु। इच्छानिरोध: तप: "

प्रद्योत साध्वी नारी का स्पर्श पा काँप उठा। उसके रोम-रोम में पावन अनुभूति व्याप्त हो उठी। उसने नारी के नये रूप के दर्शन किये। नारी में इतनी पावनता की कल्पना भी उसने नहीं की थी। उसे नई अनुभूति, नई दिशा, नई चेतना मिली। इच्छाओं का निरोध ही तप है, ये शब्द उसके कर्ण-कुहरों में प्रतिध्वनित हो रहे थे।

जल की खोज : अमृत की प्राप्ति

पर्यटक प्रेमी चित्रकार कौशाम्बी आया। चित्रकार को ज्ञात हुआ कि कौशाम्बी-पति महाराज शतानीक अपने विशाल दुर्ग के मध्य में स्थित रंगभवन को श्रेष्ठ-चित्रकारों द्वारा चित्रित कराना चाहते हैं। रंगभवन की सज्जा हेतु देश-विदेश के अनेकों चित्रकार अपनी कला और भाग्य को कसौटी पर कसने कौशाम्बी आये हैं। सहज कुतूहल में युवक पर्यटक चित्रकार श्वेतांग भी कौशाम्बी के दरबार में गया, क्योंकि उस दिन चित्रकारों को राज्य दरबार में जाने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था।

महाराज शतानीक ने चित्रकारों से कहा—

"कलाकारो ! मैं कोई चित्रकला का विशेषज्ञ नहीं हूँ। जो मेरी दृष्टि को सुख दे, वही चित्र श्रेष्ठ है और जिसका चित्र मैं सुन्दर समझूँ, वह श्रेष्ठ चित्रकार। इसलिये एक सप्ताह में प्रत्येक चित्रकार रंगभवन की सज्जा-हेतु एक-एक चित्र चित्रित करे और जिसका चित्र श्रेष्ठ होगा, उसी चित्रकार के निर्देशन में शष कलाकार कार्य करेंगे।"

प्रत्येक चित्रकार ने इस शर्त की स्वीकृति दे दी।

नियत अवधि बीतने पर प्रत्येक चित्रकार ने अपना–अपना चित्र प्रस्तुत किया। प्रत्येक चित्रकार का चित्र श्रेष्ठ था, किन्तु दसों चित्रकारों के चित्र श्रेष्ठ होते हुये भी रंगभवन के वातावरण के अनुकूल न थे। एक चित्र-कार ने सुन्दर वाटिका का चित्र अंकित किया और उस वाटिका में देवी देवताओं की पावन-प्रतिमाएं तूलिका से चित्रित की गई थीं। इसी भाँति के अनेक चित्र प्रस्तुत किये गये।

श्वेतांग ने प्रतीक्षा में व्याकुल एक नारी-चित्र चित्रित किया। नारी के अंग-अंग से यौवन फूट रहा था। वस्त्र पारदर्शी थे, रंगों का सम्मिश्रण भी अद्भुत था। विरह की पीड़ा और मिलन की आतुरता नयनों से झांक रही थी। प्रतीत होता था कि साक्षात विरहोत्कंठिता प्रेयसी अपने प्रिय की प्रतीक्षा में क्षण-क्षण गिन-गिन कर काट रही थी। शतानीक ने श्वेतांग के इस चित्र को सर्वश्रेष्ठ चित्र घोषित किया एवं रंगभवन का मुख्य चित्रकार नियुक्त किया।

श्वेतांग को रंगभवन की भितियों को चित्रित करते हुए दो सप्ताह बीत गये। अन्तःपुर के रंगभवन से संलग्न कक्ष में से एक रूपसी प्रतिदिन श्वेतांग को चित्र चित्रित करते देखती। एक दिन रूपसी लौट रही थी, तभी श्वेतांग ने पीछे मुड़ कर देखा कि रूपसी लौट रही है। कलाकार रूपसी नारी की मात्र पतली-पतली सुकोमल सुन्दर मेंहदी रची उंगलियाँ ही देख सका। श्वेतांग ने अपनी अद्‌भुत कला और कल्पना सिद्धि से नारी के वास्तविक रूप को चित्रित कर दिया। यहाँ तक कि नारी द्वारा परिहित वस्त्र, अलंकार, करतल पर रचित मेंहदी, शरीर के विविध अंगों पर प्रकृतिप्रदत्त चिन्हों को भी यथावत् अंकित कर दिया। चित्र की सम्पूर्ति पर एक अद्‌भूत सौन्दर्यमयी नारी भित्ति पर उभर आई। चित्र अत्यधिक आकर्षक था। कलाकार सोचने लगा प्रकृति ने इस वसुधा को स्वर्ग बनाने में कोई प्रयत्न शेष नहीं रखा। मानव-मन व्यर्थ की प्रवंचना में पड़ा हुआ स्वर्ग के सपनों की देवांगनाओं की कल्पना किया करता है।

एक दिन महाराज शतानीक अपने मंत्री प्रबुद्ध सहित रंगभवन की प्रगति देखने आये। श्वेतांग द्वारा चित्रित कला-चित्रों को देखकर वाह-वाह कर उठे। सहसा उनकी दृष्टि श्वेतांग के कल्पनाप्रसूत चित्र पर पड़ी। श्वेतांग को लगा कि वह क्षण आ गया, जब उसकी कला को उचित आदर प्राप्त होने वाला है। उसे कल्पना भी नहीं थी कि यह अद्‌भुत सौन्दर्यशाली चित्र उसके दुर्भाग्य का जनक बनेगा।

महाराजा शतानीक की दृष्टि ज्योंही उस चित्र पर पड़ी, एक क्षण के लिये वे स्तब्ध रह गये। क्रोध उनके नेत्रों से झलकने लगा। कोपाविष्ट वाणी में बोले—"यह चित्र किस नारी का है?"

श्वेतांग ने विनम्र स्वर में कहा—

"महाराज। यह मेरी कल्पना-शक्ति की रंगभवन को दुर्लभ भेंट है।

शतानीक ने कहा—"कलाकार मिथ्या भाषण कर अपनी मृत्यु को आमन्त्रण न दो!'

कलाकार को अपनी सिद्धि का स्मरण हो आया और उसने कहा—

'देव! अपराध क्षमा करें। मुझे ऐसी सिद्धि प्राप्त है कि यदि मैं किसी प्राणी का एक अंग मात्र देख लूं, तो उसकी वास्तविक आकृति अंकित कर सकता हूँ। सामने के रन्ध्रों में से मैंने एक नारी की कोमल उँगलियों को देखा और अपनी सिद्धि के आधार पर उसका वास्तविक सौन्दर्य मेरे नयनों

के सामने साकार हो उठा। मैंने जो अनुभूति से देखा, वही अंकित किया है।'

शतानीक को यह सत्य कपोल—कल्पना प्रतीत हुआ। शंका ने हृदय में प्रवेश किया। वर्षों का सुखद मिलन प्रवंचना सा जान पड़ा। विचार मस्तिष्क को आन्दोलित करने लगे। नारी जीवन का वह अस्पष्ट पृष्ठ है, जिसे सामान्य मानव क्या ऋद्धि-सिद्धि धारी मुनि भी नहीं पढ़ सके-नारी हृदय की जटिलताएँ उलझी हुई गुत्थी के समान हैं, जिन्हें युगों से सुलझाया नहीं जा सका। महारानी मृगावती को समस्त सुख-सुविधाएँ उपलब्ध हैं। उसके चरित्र और व्यवहार की सुवास सर्वत्र व्याप्त है...... फिर...... फिर रानी मृगावती कलाकार के इतने समीप कैसे आई कि अंग प्रत्यंग और अंगों पर सभी प्रकृति प्रदत्त लक्षणों को अंकित करने में कलाकार सफल हो सका। क्रोध का विष महाराज के रोम-रोम में समाविष्ट हो गया। शान्ति और प्रसन्नता क्षण-भर में ही तिरोहित हो गई। मस्तिष्क क्षिप्र-गति से तर्क-वितर्क करने लगा। एक कुशंका ने समस्त विगत जीवन के आनन्द को नष्ट कर दिया। उन्हें विगत, वर्तमान और भविष्य में अन्धकार की रेखाएँ दिखने लगीं। चिन्तन-क्रम अविरल गति से चलता रहा। धन, सम्पत्ति और प्रतिष्ठा पर नारी हृदय को तौलना मिथ्या है। कला अद्भुत होती है, उसमें आकर्षण होता है, कला का मूल्य सर्वस्व देकर भी नहीं चुकाया जा सकता। सम्भव है मृगावती का समर्पण कला का मूल्य हो, कला के प्रति आकर्षण हो जिसने नारी की भावनाओं को उद्वेलित किया हो, कि वह इस सीमा तक विवश हो गई हो। पर वर्षों के मृगावती के साहचर्य और प्रेममय व्यवहार ने इस बात को स्वीकार नहीं करने दिया। ज्ञान ने शतानीक की चेतना को झकझोरा। श्रमण संस्कृति के प्रति निष्ठावान तथा देवाधिदेव महावीर की अनुगामिनी नारी के चरित्र पर शंका करने के पूर्व एक शासक की तरह सत्य जानने का प्रयत्न करो राजन्! बिना प्रमाण के किसी नारी के चरित्र पर शंका करना और वर्षों से संबंधित स्वयं के सुखों को काटना बुद्धिमानी नहीं है।

महाराज ने राज्य में से सबसे कुरूप व्यक्ति का अन्वेषण किया और उसकी उँगली कलाकार को दिखाई। श्वेतांग ने उस कुरूप व्यक्ति को चित्रित कर दिया।

शतानीक को श्वेतांग का कथन सत्य प्रतीत हुआ। शतानीक के विश्वास की पुष्टि गुप्तचरों के संदेश ने भी की। उन्होंने महाराज को आकर सूचना दी कि श्वेतांग प्रथम श्रेणी का पर्यटक और प्रतिभाशाली चित्रकार है। अयोध्या के उत्तरपूर्व में सुरप्रिय नामक यक्ष का मन्दिर है। मन्दिर चमत्कार-

पूर्ण है और इसे प्रतिवर्ष चित्रों द्वारा सजाया जाता है। इस यक्ष के भक्त देवालय को चित्रित करने के उपरान्त उत्साहपूर्वक उत्सव मनाते हैं। पर्व की समाप्ति पर यक्ष चित्रकार के प्राण ले लेता है। श्वेतांग ने अपनी कला एवं प्रतिभा के आधार पर यक्ष को प्रसन्न कर यह वर प्राप्त किया कि किसी प्राणी के एक अंग को देखकर उसका सम्पूर्ण शरीर चित्रित कर सकोगे।

महाराज शतानीक ने श्वेतांग को मुक्त तो कर दिया, किन्तु वह कहीं रानी मृगावती को हाट-बाजार की वस्तु न बना दे, इस भय से चित्रकार का अँगूठा कटवाकर उसे कोशाम्बी से निष्कासित कर दिया।

श्वेतांग सोचता, कलाकार की कलात्मक प्रतिभा उसकी आत्मा है, उँगलियाँ शरीर। बिना शरीर के आत्मा नहीं, बिना उँगलियों के चित्रकार नहीं। कला का ज्ञान, अनुभूति, कल्पना शक्ति, कागज, कूँची कलम का अस्तित्त्व कलाकार की लम्बी उँगलियों के बिना व्यर्थ है। कलाकार जीवित है, पर उसकी कला मर चुकी है। उसकी उँगलियाँ कसमसाती, चित्रों को बनाने के लिये व्याकुल हो उठतीं, किन्तु वह असमर्थ था। अब चित्राँकन की इच्छा पहिले से तीव्र रूप में होती। क्योंकि दुःखों में सुख पाने की लालसा बढ़ जाती है। हृदय पटल पर एक के बाद एक चित्र बनाने की कामना करता पर विवश था। कला की असीम साधना की मनोवृत्ति ने अयोध्या के यक्ष की स्मृति दिलाई। यक्ष मन्दिर में जाकर उसने प्रार्थना की कि–

'हे यक्ष! वरदान कभी अभिशाप में परिवर्तित नहीं होता। देव! तुमने तो मुझे अद्भुत कला की शक्ति प्रदान की थी, किन्तु उसी शक्ति के कारण मैं जीवन–पर्यन्त चित्र बनाने में असमर्थ हो गया।'

यक्ष ने पुनः वरदान दिया–

'जा वामांगुष्ठ से चित्र बनाया कर, तेरी कला की विशेषताएँ दाहिने हाथ की अपेक्षा बाँये हाथ से अधिक प्रभावक होंगी।

कलाकार भाव-विभोर हो उठा। उसने तूलिका उठाई, रंग जुटाए और यक्ष के वरदान के विषय में अपने को आश्वस्त करने लगा। स्वचित्रित चित्र वह मुग्ध सा विस्मय विस्फारित नेत्रों से निर्निमेष देखता रहा। चित्र बनाते समय उसकी दृष्टि अपने दाहिने हाथ के अँगूठे पर पड़ जाती तो हृदय मे टीस-सी उठती। मन में राजा शतानीक के प्रति आक्रोश भर जाता। जीवन का वह दुर्भाग्यपूर्ण क्षण जब उसने रानी मृगावती का चित्र बनाया था, उसके हृदय में शल्य की भाँति चुभता। मन ही मन उसने प्रतिशोध का संकल्प किया और रानी मृगावती का चित्र अंकित करने बैठ गया। प्रतिशोध लेना

था महाराजा शतानीक से, किन्तु माध्यम बनी निरपराध रानी मृगावती। निरपराध सौन्दर्य प्रतिशोध की अग्नि में झुलसा। नारी का सौन्दर्य प्रकृति की देन है, उस अभिशाप बनी रानी मृगावती के सुन्दर चित्र को लेकर चित्रकार ने उज्जयिनी में प्रवेश किया और चित्र को खुले दरबार में उज्जयिनीपति प्रद्योत को समर्पित किया। अनुपम सौन्दर्य देखकर सम्राट् प्रद्योत कुतूहल मिश्रित जिज्ञासा से पूछने लगे–

'किसका चित्र है ? क्या नारी में इतना सौन्दर्य अद्‌भुत आकर्षण संभव है ? क्या यह चित्र तुम्हारी कल्पना की देन है ?

युवा चित्रकार श्वेताँग ने अधरों पर मन्द स्मिति बिखेरते हुये उत्तर दिया–

'राजन् ! मैं तो पर्यटनप्रेमी चित्रकार हूँ। देश-विदेशों में भ्रमण करने में मुझे सुख मिलता है। यदि सम्बन्धित व्यक्ति को यह ज्ञात हो गया कि यह चित्र मैंने आपको भेंट किया है तो जीवित रहना दुष्कर हो जायेगा। वह एक साधन सम्पन्न राज्य का स्वामी है, भारत जैसे विशाल देश के अनेकों समर्थ राजा उसके मित्र हैं, आत्मीय हैं। क्या आश्चर्य यदि आप भी उसके स्नेही हों।

सम्राट् प्रद्योत ने कहा–

'मैं तुम्हें अभय प्रदान करता हूँ।'

युवा कलाकार श्वेतांग ने वाक्य पूरा किया–

'सम्राट् अभय के साथ एकाँत भी प्रदान करें।'

महाराज राज्य दरबार से उठकर चले गये। प्रतिहारी कुछ क्षणों पश्चात् दरबार से चित्र उठाकर ले गया और एकान्त कक्ष में युवा कलाकार को बुलाया।

महाराज ने आतुरता से कहा–"अब बताओ किसका चित्र है ?"

कलाकार ने उत्तर दिया–'कौशाम्बी पति शतानीक की रानी मृगावती का।'

"असम्भव ! महाराज शतानीक के विशाल दुर्ग में तुम्हारा प्रवेश कैसे संभव हुआ और इस सीमा तक कि चित्र के प्रत्येक अंग को ऐसे अंकित किया है, जैसे तुमने अंगों को बार-बार बहुत निकट से देखा हो।"

राजन् ! मेरी कला की यही विशेषता है कि मैं किसी का कोई भी अंग देख लूँ तो उसके सम्पूर्ण शरीर को चित्रित करने की क्षमता रखता हूँ। राजन् कुतूहल से कलाकार का मुख देखने लगे। फिर महाराज ने स्वतः ही कहा–

"यह सिद्धि तो अयोध्या के यक्ष मन्दिर को चित्रित करने वाले चित्रकार को प्राप्त है। क्या तुम ही वह चित्रकार श्वेतांग हो ?"

श्वेतांग का शीश स्वीकृति में नीचे झुक गया।

× × ×

नारी सौन्दर्य में ऐसा कौन-सा आकर्षण है जिसे पाने को मनुष्य युग-युग से व्याकुल है। वह जहाँ भी नारी सौन्दर्य को देखता है, वहीं उसे पाने की लालसा जग जाती है। विवेक वासना के गर्त में डूब जाता है। ऋषि-मुनियों के उपदेश उसके हृदय से निर्वासित हो जाते हैं। इस वासना की अपवित्र वेदी पर कितनी निरपराध नारियों की भावनाएँ कुचल कर अर्पित की गई है कौन जाने ?

कुछ याद है अनेक इतिहास के पृष्ठों तक नहीं आ पायीं।

प्रद्योत के दूत ने शतानीक के राज्य दरबार में प्रवेश किया। महाराज शतानीक ने कहा—

"इस राज्य-दरबार में आने का प्रयोजन कहो। कहो महाराज प्रद्योत सकुशल तो हैं ?"

उज्जयिनी-पति, सम्राट प्रद्योत जिनके पौरुष की चर्चायें आर्यावर्त में सर्वत्र फैली हुई हैं, शक्ति सज्जित सैन्य शक्ति आर्यावर्त के अनेकों राजाओं की संयुक्त शक्ति से कहीं अधिक शक्तिशाली और सम्पन्न है। वे कौशाम्बी की रूपसी रानी मृगावती को अपनी रानी बनाने की कामना अभिव्यक्त करते हैं।

राजसभा में इतना सुनते ही उत्तेजना फैल गई। अनेकों श्रेष्ठि एवं उपस्थित सामंत चीखे:-

'इस दूत की बोटी-बोटी काटकर स्वर्ण-थालों में कामी प्रद्योत के समीप भेज दो इसके अतिरिक्त कोई उत्तर प्रद्योत के लिये नहीं हो सकता।'

महाराज शतानीक ने अपनी गरिमा के अनुरूप गम्भीर स्वर में कहा—

'शान्ति ! और दरबार में निस्तब्धता छा गई।

महाराज शतानीक ने कहा—

'दूत, यदि शतानीक का दूत उज्जयिनी के भरे दरबार में प्रद्योत की महारानी को कौशाम्बी की महारानी बनाने का प्रस्ताव रखे तो तुम्हें और तुम्हारे महाराज को कैसा लगेगा ?'

दूत का चेहरा तमतमा उठा और बोला—'तो प्रद्योत एक ही आक्रमण में कौशाम्बी राज्य को रसातल में मिला देगा। उज्जयिनीपति प्रद्योत के समक्ष ऐसा घृणित प्रस्ताव रखने का साहस किसमें है ?' दूत शतानीक के वाक्‌जाल में उलझ गया।

महाराज शतानीक ने कहा—'जो प्रस्ताव तुम्हारे महाराज के लिये घृणित है। वह दूसरों को प्रिय कैसे हो सकता है ? जाओ—अपने महाराज से कहो—जब उज्जयिनीपति इतना कामी है कि सुदूर राज्य की रानियों पर वासनापूर्ण दृष्टि रखता है, तब उसके सामंत और कर्मचारी कितने वासनायुक्त होंगे ? बलात्कार और अपहरण की घटनाऐं तो उज्जयिनी के सामान्य जीवन का अंग बन गई होंगी। जिस समय में चरित्र व नैतिक मूल्यों का आदर न हो, वह राज्य अधिक नहीं टिकता। जाओ अपने राजा से कहना—मद्य कम पिये, ज्ञान सीखे, ज्ञानी पुरुष उज्जयिनी में न हो तो कौशाम्बी से भेज दूँ समान राजाओं का आदर करना सीखे अन्यथा प्रद्योत के वंशज भिक्षुक का वेश स्वीकार करने को विवश हो जायेंगे।

दूत का उत्तर सुन प्रद्योत का चेहरा तमतमा उठा और उज्जयिनी की सेना ने कौशाम्बी की ओर प्रयाण कर दिया। लम्बी यात्रा तय कर उज्जयिनी की सेना कौशाम्बी पहुंची। महाराज शतानीक ने युद्ध की विशाल तैय्यारियां की थी। युद्ध में पराक्रम दिखाने के लिये सैनिक सन्नद्ध थे, किन्तु आर्ष-कर्मों ने सांस की डोर खींच दी और उज्जयिनी के सेना के आगमन के पूर्व ही शतानीक इस लोक से जा चुका था। महाराज की मृत्यु, युवराज का बाल्यकाल और शत्रुसेना का कौशाम्बी के विनाश हेतु प्रवेश। इन विशेष परिस्थितियों में महारानी मृगावती को राज्य की व्यवस्था और अपने सतीत्व की रक्षा एक प्रश्न बन गया, जिसका उत्तर खोजने पर भी नहीं मिल रहा था।

सहसा मृगावती को वर्द्धमान तीर्थंकर महावीर की स्मृति हो आई। उसका हृदय श्रद्धा भक्ति से भर उठा। देवाधिदेव महावीर के श्रीचरणों में श्रेणिक बिम्बसार प्रसेनजित सरीखे अनेक राजा महाराजा विनत हुए हैं।

वर्द्धमान जहाँ भी जाते हैं उनके पावन चरणों के संस्पर्श से माटी महकती है। यज्ञों से उठती हुई अग्नि शान्त हो जाती है। वर्तमान युग में वर्द्धमान के चरणों को छोड़कर कोई और शरण नहीं है।

वर्तमान युग में ऐसा कोई समर्थ शासक नहीं है, जो तीर्थंकर के चरणों में से किसी नारी का हरण कर ले जाये। मृगावती को साहस मिला और कुछ

ऐसा संयोग प्राप्त हुआ कि वर्द्धमान महावीर कौशाम्बी पधारे। रानी मृगावती ने समस्त आभूषणों का परित्याग कर दिया। मात्र एक साड़ी धारण कर वह वर्द्धमान के चरणों में आश्रय पाने चल पड़ी। देवाधिदेव वर्द्धमान महावीर के समवशरण में, तीर्थंकर के श्री चरणों में अनेकों राजा श्रेष्ठि, साधु-साध्वी अन्य नर-नारी शान्तिभाव से बैठे थे। मृगावती का भय विनष्ट हो गया, हृदय को साहस और शक्ति मिली। उसने मन ही मन प्रभु वर्द्धमान के तप, त्याग, संयम को सराहा। वह प्रभु के चरणों में समर्पित हो गई। उसे सद्दृष्टि मिली। समवशरण की पावनता से उसके रोम रोम में वह अनुभूति जगी, अपूर्व सुख मिला, जैसा कि उसने कभी अनुभव नहीं किया था। प्रभु के चरणों में आकर रानी मृगावती निहाल हो उठी। तीर्थंकर व वर्द्धमान महावीर की प्रथम शिष्या सती चन्दनबाला से उसने साध्वी पद की दीक्षा ली थी। वह भूल गई कि किसी प्रद्योत की वासनायुक्त आंखें उसे खोज रही हैं, वह भूल गई कि उसका पुत्र अल्पवयस्क है। वह भूल गई कि महाराज शतानीक के राज्य को रसातल में मिलाने के लिये प्रद्योत और उसकी सेना आ रही है। उसे दीक्षा के प्रथम क्षण में ही आत्मानुभूति के निर्मल सुख का साम्राज्य मिला, जहाँ वासना, विकारों, इन्द्रिय सुखों को कोई स्थान नहीं है। अतीन्द्रिय सुखों की कल्पना नहीं की जा सकती, पाया जा सकता है।

प्रद्योत की सेना ने कौशाम्बी की सीमा में प्रवेश किया। इसी समय प्रद्योत के बिखरे हुए गुप्तचरों में से एक ने आकर सूचना दी, महाराज कौशाम्बी के समीप महावीर का समवशरण आया है और मृगावती मात्र एक श्वेत साड़ी धारण किये हुए है।

'कृत्रिम आभूषणों के परित्याग से वह पुष्परहित लता की भांति और अधिक आकर्षक लग रही है। कोई सैनिक सुरक्षा उसके पास नहीं है। समवशरण में चर्चा थी कि मृगावती सती चन्दनबाला से प्रव्रज्या लेने वाली है। विलम्ब न करें उस रूपसी को अब सहज ही रक्तपात के बिना प्राप्त किया जा सकता है।'

प्रद्योत ने कहा 'मूर्ख शांत हो। जब मृगावती ने दुर्ग छोड़ा, तब उसे बन्दी क्यों नहीं बनाया? अब किसकी सामर्थ्य है कि उसे वहाँ से ला सके। तीर्थंकर महावीर के समवशरण में जहाँ प्रद्योत जैसे अनेक शासक बैठते हैं, तीर्थंकर के चरणों की धूलि माथे से लगाते हैं, तीर्थंकर महावीर वज्जिसंघ के समर्थ राजा सिद्धार्थ का पुत्र है। सम्राट् श्रेणिक सदृश युग-सम्राट् उनके भक्त हैं। वहाँ भी जाते हैं सम्राट् और श्रेष्ठि तीर्थंकरों के चरणों में आश्रय पाने

को व्याकुल हो उठते हैं। तीर्थंकर वर्द्धमान को युग के अनेकों समर्थ शासकों का बल प्राप्त है। मृगावती को समवशरण से हरण करना अपने दुर्भाग्य को आमन्त्रण देना है। अपनी प्रतिष्ठा व सत्ता को रसातल में पहुँचाना है। अब कुछ नहीं हो सकता। जय-पराजय में परिवर्तित हो चुकी है। मैं अब तीर्थंकर के चरणों की वन्दना से क्यों वंचित रहूँ? विलासी प्रद्योत अस्त्र-शस्त्र रख परम ज्योति महावीर के दर्शनों को चला जा रहा था।

समवशरण में गंधकुटी में परमज्योति तीर्थंकर महाराज को देखकर प्रद्योत विस्मित रह गया। वर्द्धमान महावीर के मस्तक के चारों ओर तेजो वलय जगमगा रहा था, अंग-अंग से कान्ति प्रस्फुटित हो रही थी। ज्ञान की सतत् निर्झरिणी प्रभु के श्रीमुख से प्रवाहित हो रही थी। समवशरण में चारों ओर पावनता व्याप्त थी। क्या राजा-क्या रंक सभी समान रूप से बैठे थे। ऐसे पुनीत वातावरण की प्रद्योत ने कल्पना भी नहीं की थी। तीर्थंकर की दिव्य-ध्वनि की समाप्ति पर प्रद्योत के नेत्र रानी मृगावती के दर्शन के लिए व्याकुल हो उठे। अनेकों रानियां, राजपुत्रियां, श्रेष्ठि-पत्नी, वर्द्धमान महावीर के संघ में प्रविष्ट हो चुकी थीं। अनेकों रूपसी साध्वियाँ थीं। प्रद्योत पूछता-पूछता महासती चन्दनबाला के निकट पहुँचा। पास ही मृगावती बैठी थी। सहस्रों किरणों के देखने पर जैसे आँखें चकाचौंध हो जाती हैं, वैसे ही साध्वी मृगावती का तेजस्वी रूप देखकर प्रद्योत चकित रह गया। श्रृंगार–रहित मृगावती की देह चित्रकार श्वेतांग के चित्र से अधिक सुन्दर, अधिक आकर्षक लगी। प्रद्योत मृगावती के निकट पहुंचा, चरणों की धूलि माथे से लगाकर बोला—

"साध्वी मृगावती के चरणों में उज्जयिनीपति प्रद्योत का नमन।"

साध्वी मृगावती ने प्रद्योत पर दृष्टि डाली और उसके मस्तक पर हाथ रखकर बोली—

"बन्धु—इच्छानिरोधानि तपः।"

प्रद्योत साध्वी नारी का स्पर्श पा कांप उठा। उसके रोम-रोम में पावन अनुभूति व्याप्त हो उठी। उसने नारी के नये रूप के दर्शन किये। नारी में इतनी पावनता की कल्पना भी उसने नहीं की थी। उसे नई अनुभूति नई दिशा, नई चेतना मिली। 'इच्छाओं का निरोध ही तप है।' ये शब्द उसके कर्ण-कुहरों में प्रतिध्वनित हो रहे थे।

नर्मदासुन्दरी सोच रही थी, "पाप को कितने समीप से देखा है, वासनाभरी उच्छ्वासों को कितने समीप से सुना है। मद्य के व्यसन की कुरूपता को, तद्जनित वासना को कितने समीप से देखा है। पर सौभाग्य से किसी पापवृत्ति ने मुझे छुआ नहीं, आकर्षित भी नहीं किया। रूप के अंतिम परिणाम को मुझसे अधिक किसने देखा है, श्मशान में जलती हुई रूप-कुरूप लाशें आज भी पास मँडरा रही हैं, नर्मदा हमारी तरह तू भी अशेष हो जायेगी। काल की गति को कोई रोक सका, न पकड़ सका!

दुःखों की पारसमणि

प्रकृति श्रेष्ठ शिल्पी है, श्रेष्ठ चित्रकार ! उसकी छैनी, उसकी तूलि अद्भुत है। छैनी में तराश, तूलि में चित्रित करने की शक्ति, रंगों के अद्भुत सम्मिश्रण की कला उसे सहज ही प्राप्त है। प्रकृति प्रदत्त रूप, यौवन और नयनाभिराम प्राकृतिक दृश्यों को देखकर वसुधा के श्रेष्ठ शिल्पी श्रेष्ठ चित्रकार बालसुलभ कुतूहलमयी दृष्टि से देखते रह जाते हैं। मानव ने जो सृजन की शक्ति बटोरी है, वह प्रकृति के विशाल प्रांगण में बैठकर सीखी है। मानव स्वयं ही प्रकृति की सुख-दुखभरी अनुभूतियों का खिलौना है। प्रकृति सृष्टा है, वह अपने सृष्टा से बड़ा कैसे हो सकता है !

प्रकृति के दुलार भरे हाथों ने विश्व के सारभूत तत्त्वों से एक नारी के रूप को सँवारा, युग ने उस नारी को नर्मदासुन्दरी की संज्ञा दी, रूप अनुपमेय था। युवकों की गोष्ठियों में उसकी चर्चा थी। संभ्रान्त श्रेष्ठि परिवार उसे पुत्रवधु के रूप में पाने आतुर थे। यौवन की देहरी स्पर्श करते ही उसके नयन त्रस्त हरिणी से चंचल हो उठे। यौवन ने उत्कण्ठापूर्वक उसके समस्त शरीर का आलिंगन किया।

भृगुकच्छ के सागरतट पर श्रेष्ठि महेश्वरदत्त का जलपोत यवनद्वीप की यात्रा हेतु सज्जित था। युवा श्रेष्ठ महेश्वरदत्त अपनी रूपसी पत्नी नर्मदासुन्दरी के साथ धनार्जन हेतु समुद्र-यात्रा पर जा रहे थे। युवाश्रेष्ठि महेश्वरदत्त के पिता रुद्रदत्त एवं माता ऋषिदत्ता ने पुत्र को समझाया—पुत्र कल ही तुम्हारा पाणिग्रहण हुआ, श्रेष्ठिवर्ग, राजकीय कर्मचारी, जाति-बन्धु प्रतिदिन नवदम्पति की मंगल-कामना हेतु आयेंगे। उनका आशीष लेने के लिये कुछ दिन रुको ! किन्तु श्रेष्ठिपुत्र ने कहा—

पूर्वजों द्वारा अर्जित संपत्ति का संरक्षण और वर्द्धन वणिकपुत्र का प्रथम कर्तव्य है। सम्पत्ति उपार्जन का सुअवसर सदैव नहीं मिलता। यवनद्वीप से ज्ञात सूचना के आधार पर रेशमी वस्त्रों की वहाँ अधिक माँग है। रेशमी वस्त्रों का भण्डार हमारे पास पर्याप्त मात्रा में है, अतः विलम्ब करना व्यवसाय के हित में नहीं होगा।

पिता ने कहा—'महेश हमारी सम्पत्ति की क्या कोई थाह है ? हमारे पुत्र—पौत्रादि इसे मुक्तहस्त से व्यय करें तो भी समाप्त न हो। भोग कितना भोगना चाहता है। वधु अत्यन्त सुकोमल है। यात्रा की थकान और यवनद्वीप

की जलवायु सहन न कर सकेगी। महेश अभी जीवन का प्रारम्भ है। यह आयु सुखों को भोगने की है। समुद्र यात्रा की विपत्तियों से तुम अनभिज्ञ हो। विकट जलचर जलयान को झकझोर देते हैं। तूफान का कोप सदैव ही बना रहता है। समुद्रयात्रा में व्यक्ति जीवन–मरण के डोल में झूलता रहता है। अच्छा हो कि तुम इस यात्रा का विचार कुछ काल के लिये स्थगित कर दो, और फिर तुम अपनी माँ के एक मात्र पुत्र हो। वधु को देखने की तुम्हारी माँ की चिर साध थी, अब पुत्रवधु के साथ कुछ काल तक तुम इस भवन में ही निवास करो।'

पर, पिता के उपदेशों का महेशदत्त की व्यवसायिक वृत्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

दिनकर की प्रथम किरण फूटते ही महेशदत्त अपनी पत्नी सहित भृगु-कच्छ के सागर तट पर पहुँच गया और प्रियजनों से उल्लासपूर्वक मंगल-कामनायें स्वीकार करने लगे। इस यात्रा में अनेक महत्त्वाकाँक्षी युवक सम्मिलित थे, अनेक प्रौढ़ अनुभवी श्रेष्ठि भी इस सार्थ के साथ यात्रा हेतु सन्नद्ध थे। समुद्र तट पर खड़े हुए परिजन अपने स्नेहियों को बिदा कर रहे थे। लंगर खोल दिया गया, जलपोत चल पड़ा। मंगलवाद्य बजाये गये, यात्रियों ने इष्ट देवता को स्मरण किया, जयघोष से दिशायें मुखरित हो गयीं।

यात्रा दीर्घकालीन थी, प्रतिदिन सूर्य की प्रथम किरणों के साथ यान चल पड़ता, और सूर्य के विश्राम के लिये अस्ताचल की ओर जाते ही यात्री भी विश्राम के लिए उचित स्थान खोज कर पड़ाव डाल देते।

एक दिन इसी भाँति जब सूरज अपनी किरणें समेट अस्ताचल की ओर जा रहा था, तब जहाज रुका। यात्रा से श्रान्त यात्रियों ने जलधि के समीपवर्ती स्थान पर शिविर निर्मित किये।

रात्रि का प्रथम प्रहर अभी समाप्त ही नहीं हुआ था कि समीपवर्ती शिबिर से समधुर बाँसुरी का स्वर सुनाई दिया। नर्मदासुन्दरी ने कहा–

"नाथ ! कितना मधुर स्वर है, कितना मार्मिक स्वर है, हृदय के अन्तराल में स्वर उतरे जा रहे हैं, किसी ने सत्य ही कहा है—पीड़ा भरा संगीत सबसे मधुर और प्रभावक होता है।"

महेशदत्त की संगीत में कोई रुचि नहीं थी। श्रेष्ठिपुत्र का मस्तिष्क व्यवसायिक गुत्थियों को सुलझाने में व्यस्त था। महेशदत्त ने कहा–

प्रिये ! विश्राम करो, कौन जाने दीर्घयात्रा में कितने ऐसे मार्मिक स्वर सुनने को मिलेंगे।

रात्रि के मध्य में नर्मदासुन्दरी की निद्रा टूटी। महेशदत्त निद्रा में बेसुध पड़े थे। नर्मदासुन्दरी बड़े ध्यान से गीत को सुनती रही। एकाएक स्वरों की गति तीव्र हो गई। नर्मदासुन्दरी के मुख से अकस्मात निकल पड़ा – ओह !

श्रेष्ठिपुत्र चौंक कर जाग पड़े बोले क्या हुआ सुन्दरी ?

सुन्दरी ने कहा–वेणुवादक अद्भुत कलाकार है, स्वरमण्डल के ज्ञान से मैं बता सकती हूं कि वह युवा है और उसकी आयु 32 वर्ष की है और कलाकार की जंघाओं पर काली रेखाएँ हैं। महेश्वरदत्त ने तन्द्रिल बोझिल पलकें खोलते हुए कहा - सब व्यर्थ की बात है, प्रातः यात्रा प्रारम्भ करना है, विश्राम करो। कुछ समय बाद बांसुरी का मार्मिक स्वर क्षीण पड़ा और धीरे-धीरे समाप्त हो गया।

संगीत के स्वर नर्मदासुन्दरी के प्राणों में उतर गये। यात्रा के प्रथम चरण में प्राणों को मुखर करने वाले बांसुरी के स्वर सुनकर नर्मदासुन्दरी को अत्यधिक सुख मिला। नींद के कारण उसकी पलकें बोझिल हो उठी और निद्रादेवी की गोद में अचेत हो गई। उसके अवचेतन मस्तिष्क में अनेक सुखद स्मृतियां स्वप्न बन कर छाने लगी। महेश्वरदत्त ने अर्द्धचेतन अवस्था में बांसुरी और बांसुरीवादक के विषय में सुना, पर सुनकर उसकी नींद उड़ गई। बांसुरीवादक युवक है, उसकी जंघाओं पर काली रेखाएँ अंकित हैं, स्वरमंडल का ज्ञान इतना गंभीर कहाँ कि वह वादक के अंगों पर चिह्नित चिह्नों की घोषणा कर सके। तब क्या नर्मदासुन्दरी विनोद कर रही थी। नहीं! नहीं! कदाचित् बांसुरी के मादक स्वरों के आकर्षण ने रात्रि के प्रथम पहर से मध्य तक यात्रा की है और वादक का प्रणयभरा स्पर्श पाया है ?

महेश्वरदत्त का शंकुल हृदय कुशंकाओं से भर उठा। वह सो न सका। आवेग और आवेश में रात्रि के अन्तिम प्रहर में नर्मदासुन्दरी को अकेली छोड़ कर उसने यात्रा प्रारम्भ की। नर्मदासुन्दरी सुखद भविष्य के सुखद स्वप्न देखती रही। नर्मदा की आंख खुली, उसने चारों ओर उत्सुकता से देखा शिविर में कोई न था, बाहर निकली तो देखा कि सभी शिविर उठ चुके हैं। उसके अतिरिक्त किसी दूसरे मनुष्य का कोई चिह्न नहीं है। न उसके प्राणेश, न कर्मचारी और न कोई सार्थ का अन्य व्यक्ति। चिड़िया की चहचहाहट और सागर की गंभीर गर्जना के अतिरिक्त और कोई स्वर सुनाई नहीं दे रहा था ! वह चकित रह गई पोत जा चुका था !

नर्मदासुन्दरी की वेदनाभरी आंख सागर की लोटती हुई लहरों के साथ पूर्व से पश्चिम के अन्तिम छोर तक चली गयी, उसकी भावनाएँ सागर की असीम गहराई में डूबती चली गई ! उसे लगा कि उसका सुख असीम आंसुओं और उच्छ्वासों में डूबता चला जा रहा है। इस विशाल विश्व जलधि की गहराई में से सुखों को खोज-खोजकर जिसने लाकर देने का संकल्प लिया था, वह गोताखोर स्वरमण्डल की अज्ञानता और शंका के उथले जलकूप में डूब गया है।

यह सागर का असीम-जल खारा है इस असीम जल से तृप्ति की आशा व्यर्थ है, इसकी बूंद-बूंद में विष-सी कटुता है, इन लोटती हुई लहरों के साथ किसी पोत के लोट आने की आशा व्यर्थ है, फिर भी उसकी तृष्णाभरी व्याकुल आंखें जहां तक संभव था आशाभरी दृष्टि से निहारती रहीं......
निहारती रही। पर किसी को न आना था न कोई आया। रूप उसे अभिशाप लग रहा था, यौवन जैसे उसे छल रहा था। बहुमूल्य आभूषण उसे लगा कि उसकी हँसी उड़ा रहे थे, क्योंकि रूप, यौवन और सम्पदा संरक्षण चाहते हैं और वह निराश्रित हो गई थी। पांव जहां उसे ले गये, वह वहां गई उसका न कोई गन्तव्य था न कोई पथ-प्रदर्शक।

दिन किसी प्रकार बीत गया। रात्रि ने अपने पंख पसारना प्रारम्भ किया। नर्मदासुन्दरी की विकलता और बढ़ गई। रात्रि की नीरवता, सागर की गर्जना, हिंसक पशुओं की ध्वनि दिल दहला देने वाली थी। वृक्ष का एक पत्ता भी खड़कता तो उसकी स्त्री-सुलभ भीरुता और बढ़ जाती।

यह दारुण दुःख उसके लिए कल्पनातीत था। वह सोच रही थी कि सुख के दिन तूल से हवा में उड़ते मालूम होते हैं, और दुःख का एक क्षण कठिनता से व्यतीत होता है। उसने मन ही मन संकल्प किया कि यदि मैं कदाचित् इस जीवन में भृगुकच्छ लोट सकी, तो जीवन को सार्थक करने के लिए जिन-दीक्षा धारण करूंगी जिससे अगले जन्म में इन दुःखों की भागी न बनूं।

भाग्यचक्र परिवर्तित होते देर नहीं लगती, नर्मदासुन्दरी के सुकृत की प्रबलता से पितृव्य वीरदास जो व्यापारार्थ बब्बर-कूल जा रहा था, वहां आ पहुंचा। वह अपनी भतीजी को वहां देखकर विस्मित रह गया। नर्मदासुन्दरी भी अपने भाग्य पर एकाएक विश्वास न कर सकी। विधि की अटलता पर उसका विश्वास दृढ़ हो गया, उसने सोचा मेरे पूर्वसंचित पुण्य अवशिष्ट थे, तभी तो मुझे पुनः स्वदेश लौटने का, धर्म की शरण में जाने का सुअवसर

मिलने वाला है । उसके चाचा ने नर्मदासुन्दरी के निर्जन वन में एकाकी भ्रमण करने का दुखाद वृतान्त सुनकर सान्त्वना दी और उसे अपने साथ बब्बरकूल ले गया ।

श्रेष्ठि वीरदास की विपुल सम्पदा की ख्याति बब्बरकूल की प्रमुख गणिका हरिणी के कानों तक पहुंच चुकी थी, उसने अपनी अधीनस्थ चतुर गणिका करिणी के द्वारा उसे निमन्त्रित किया ।

श्रेष्ठि वीरदास ने कहा—"समय और परिस्थितियाँ इस समय अनुकूल नहीं है कि तुम्हारी स्वामिनी का आतिथ्य स्वीकार कर सकूं, फिर कभी इस मार्ग से लौटा तो अवश्य ही तुम्हारी स्वामिनी के रूपोद्यान के पुष्पों की गन्ध लूंगा । अपनी स्वामिनी को मेरी ओर से यह बहुमूल्य वस्त्र और 500 मुद्राएँ भेंट करना ।"

करिणी जब श्रेष्ठि के निवास से लौट रही थी, उसकी दृष्टि नर्मदासुन्दरी के रूप पर पड़ी, उसकी आँखों में कुटिल मुस्कान उभरी और सोचने लगी—काश ! यह सुन्दरी रूप के हाट में बैठ जाये, तो सम्पत्ति चरणों में लोटने लगे !

नर्मदासुन्दरी से उसने आत्मीयता भरी बातें की, और लौट गई । कुछ दिनों में उसने अपने आपको नर्मदासुन्दरी के स्नेह और विश्वास का पात्र बना लिया । उसकी सरलता से लाभ उठाकर एक दिन वह रथ में बिठाकर उसे नगरी की शोभा दिखाने ले चली । नारी ने नारी को छला। कुटिलता ने सरलता को छला, वह सरला कुलवधू उस पण्यांगना के जाल में उलझ गई और रथ वेश्यालय के समक्ष जा पहुंचा ।

वीरदास ने नर्मदासुन्दरी को खोजने के अनेकों प्रयत्न किये, पर दुर्भाग्य अभी नर्मदा का दामन पकड़े हुए था । अत: वीरदास के प्रयत्न व्यर्थ हुए । यात्रा में दीर्घ समय व्यतीत हो चुका था, वह कब तक प्रतीक्षा करता, अन्त में निराश होकर उसने अपना प्रवास प्रारम्भ कर दिया ।

सन्ध्या में रूप की विपणि को देखकर आँखें चौंध जाती थी । हरिणी का भवन बब्बरकूल की एक लम्बी वीथिका में था । वीथिका के दोनों ओर वेश्याओं के भवन थे । इस वीथिका में अनेक उपवीथिकाएं थीं । वीथिका के प्रत्येक भवन के आगे झरोखे बने हुए थे । सन्ध्या में अनेक युवतियाँ, प्रौढ़ और वृद्धायें इस घृणित व्यापार के लिये अपने रूप को सजा कर बैठती थी । नर्मदा का हृदय इस बीभत्स स्थान को देखकर काँप उठा । इस बाजार की

स्वामिनी थी हरिणी, जो समस्त गणिकाओं से उनकी आय का चतुर्थांश ग्रहण करती थी। नर्मदासुन्दरी करिणी के साथ ही रह रही थी। नर्मदा-सुन्दरी की सरल सात्विक दिनचर्या ने हरिणी को अत्यधिक प्रभावित किया। वेश्या करिणी वेश्या होते हुए भी नारी थी। करुणा नारी का अभिन्न अवि-भाज्य अंग है, नारी से किसी भी स्थिति में करुणा और ममता को पृथक् नहीं किया जा सकता। करिणी का हृदय पश्चात्ताप से द्रवित हो उठा, उसने नर्मदासुन्दरी को अपने संरक्षण में ले लिया। नर्मदासुन्दरी करिणी का गृह-कार्य करने लगी।

दिन बीत गये, मास बीतते गये। नर्मदासुन्दरी असीम सम्पदा के इस दासी-कर्म में अभ्यस्त होती जा रही थी, किन्तु उसका दुर्भाग्य इस दुर्दशा से सन्तुष्ट न था। हरिणी की अधिक सुरापान के कारण मृत्यु हो गई। गणिका प्रमुख के पद के उत्तराधिकारी का प्रश्न गणिकाओं के समक्ष विषम रूप से उपस्थित हुआ। प्रत्येक गणिका अपने-अपने अधिकार का प्रतिवेदन प्रस्तुत कर रही थी। इस विषम स्थिति में एक वृद्धा गणिका ने सुझाव रखा कि रूप के हाट की परम्परा है, उसके अपने नियम हैं, जो सबसे अधिक सुन्दरी होती है, वही रूप के हाट की प्रधान गणिका होती है। मेरी आँख में इस हाट में नर्मदासुन्दरी से बढ़कर कोई सुन्दरी नहीं है, सच तो यह है कि मेरी आँख ने ऐसा रूप-सौन्दर्य, यौवन देखा ही नहीं है।" नर्मदासुन्दरी को गणिका-प्रमुख बनाना सभी ने स्वीकार कर लिया।

वर्षों बाद आज उसका बलात् श्रृंगार किया गया और प्रमुख गणिका के पद पर अभिषिक्त किया गया उस रात व्यवसाय बन्द था। प्रातः होते ही करिणी ने नर्मदासुन्दरी के परिधानों को धारण कर लिया और उसका स्थान ग्रहण कर लिया।

बब्बरकूल के एक श्रेष्ठि ने रात्रि में नर्मदासुन्दरी को गवाक्ष में बैठे देखा था। रात्रि में उत्सव के उपलक्ष्य में व्यवसाय बन्द था, श्रेष्ठि की पारखी आँखों ने रूप को देखा, सुरभित यौवन के मूल्य को आँका। कहीं कोई अन्य रात्रि हेतु रूप की सम्राज्ञी को अनुबन्धित न कर ले, इसलिये वह प्रभात होते ही गणिका की वीथिका में पहुँचा। हरिणी के भवन में उसने प्रवेश किया, करिणी का आतिथ्य स्वीकार कर पूछा, 'नवीन स्वामिनी कहाँ है?'

करिणी ने कहा—"श्रीमान् मैं ही हूँ।"

श्रेष्ठि ने विस्मयपूर्ण दृष्टि से देखा। करिणी ने कहा—

"श्रेष्ठिवर्य ! आपकी स्मरण शक्ति भी विचित्र है, रात्रि की बात प्रात होते-होते भूल गये ।" श्रेष्ठि ने उत्तर दिया—

"रूपसी नारी का हृदय एक रात्रि में बदल सकता है, पर शरीर नहीं ।"

"श्रीमान् ने सत्य कहा पर अधिक सुरापान के कारण रात्रि में देखी नारी सुबह बदली लगे तो आश्चर्य ही क्या?" करिणी का प्रत्युत्तर था ।

श्रेष्ठि ने व्यग्रता से कहा...'व्यंग्य, विनोद बन्द करो । रूपसी गणिका को उपस्थित करो । मूल्य के लिये मैं तुम्हारा मुख नहीं पकड़ूंगा ।'

करिणी प्रतिवाद करती रही कि, 'वह स्त्री मैं ही हूं ।' इस पर श्रेष्ठि क्रोधित हो उठा और बोला—"मैं तुम्हारा व्यवसाय बन्द कर दूंगा ।"

श्रेष्ठि बब्बरकूल के अधिपति का अन्तरंग मित्र था । रात्रि में संगीत-सभा श्रेष्ठि नृपति के समीपस्थ आसन पर आसीन था । नर्तकी की रूप-राशि को लक्ष्य कर महाराज ने श्रेष्ठि से कहा—

"मित्र ! देखो कैसा रूप कैसा यौवन ! ऐसे रूप और यौवन के दर्शन सुदूर तक दुर्लभ हैं ।" श्रेष्ठि ऐसे ही सुअवसर की प्रतीक्षा में थे । उन्होंने कहा—

"महाराज ! आपका कथन सत्य ही है किन्तु बब्बरकूल की गणिकाओं की वीथिका में जो अनुपम सौन्दर्य है, उसकी तुलना में यह रूप, यह सौन्दर्य कहीं नहीं ठहरता । एक बार देखेंगे तो निर्निमेष देखते रह जायेंगे ।"

महाराज का विलासी मन ऐसी सूचना का अनादर क्यों करने लगा—प्रात: होते ही कतिपय सैनिकों के सहित एक शिविका और चार शिविका-वाहक भेजे । गणिकाओं के उपहार के लिए बहुमूल्य वस्त्राभूषण भी प्रेषित किये ।

राजाज्ञा को सुनकर करिणी भयभीत हुई, उसने विवश होकर नर्मदा-सुन्दरी से कहा—

"बहिन ! अब मैं तुम्हारे सतीत्व की रक्षा करने में असमर्थ हूं । मैं उस दुर्दिन के लिए लज्जित हूं उस क्षण के लिए मेरे मन में परिताप है, जब मैं दुर्विचारों से प्रेरित होकर तुम्हें यहाँ लाई थी । अपने उसी पाप के प्रायश्चित के लिए मैं यथासंभव तुम्हारी सहायता करती रही, किन्तु अब मैं विवश हूं । राजाज्ञा का उल्लंघन असम्भव है । वह बलपूर्वक तुम्हें यहाँ से ले जायेगा, प्राण देकर भी तुम्हारे शील की रक्षा में मैं असमर्थ हूं ।"

नर्मदासुन्दरी ने कहा "करणी तुम धन्य हो । तुमने मेरे सतीत्व की रक्षा के लिये हर संभव प्रयास किया, पर मेरे दुर्भाग्य का ही अन्त नहीं !"

कांपते हाथों से करिणी ने नर्मदासुन्दरी का श्रृंगार किया और उसे शिविका में बिठा दिया।

सज्जित राजपालकी में कोमलांगी नर्मदासुन्दरी आरूढ़ थी। पालकी के आगे-पीछे सैनिक चल रहे थे। शिविकावाहक अपनी प्रवृत्ति और अभ्यास के अनुसार विशेष प्रकार की ध्वनि कर रहे थे, मानो उनके स्कन्धों पर अत्यधिक भार स्थित हो।

नर्मदासुन्दरी सोच रही थी कि प्रकृति ने नारी को रूप दिया, यौवन और आकर्षण भी, किन्तु अंग-अंग में इतनी सुकोमलता भर दी कि वह अपनी ही सुरक्षा में असमर्थ हो गई। कौन जाने समाज की रचना के पूर्व नारी भी पुरुष की तरह सशक्त हो, क्या यह सम्भव नहीं कि पुरुष ने अपनी स्वार्थपूर्ति के लिये नारी के हाथों को चूड़ियाँ, कलाई को कंकण, पाँवों को नूपुर, भाल को बिन्दी और मांग सुहाग के सिन्दूर का प्रलोभन देकर उसकी मानसिक शक्ति को शारीरिक श्रृंगार की ओर झुका दिया हो और उसकी शक्ति–संचय की प्रवृति ही नष्ट कर दी हो ?

यह शिविका कारागृह है, इससे उतर क्या बब्बरपति के वासना भवन में कैद हो जाना पड़ेगा ? नारी के चरित्र रूपी पंख यदि कट गये तो वह असमर्थ हो जायगी। वासना के पंख से निकलना दूभर हो जायगा। इस पिंजरे में एक बार बन्दी हो जाने पर इससे दूर होना असम्भव है। पिंजरे से मुक्त होने का अवसर मिलने पर भी वह विवश पक्षी की भाँति उसी पिंजरे का आश्रय पाने को अकुलायेगी। पक्षी की ही भाँति नारी कितनी असमर्थ है, कितनी पराश्रित। पिंजरस्थ पक्षी पुनः अपने पक्षी–समाज में स्थान नहीं पा सकता, नारी भी एक बार चरित्रभ्रष्ट हो जाय, तो सभ्य समाज के द्वार उसके लिए बन्द हो जाते हैं। चाहे उसका पतन उसकी विवशता के कारण ही क्यों न हुआ हो, चाहे वहां उसकी मानसिक पवित्रता अक्षत ही क्यों न हो। नर्मदासुन्दरी तीव्रता से अपने पातिव्रत्य की सुरक्षा के उपाय सोच रही थी।

सहसा एक विशाल वापिका को देखकर कहार रुके। वापिका में जल तक पहुँचने के लिए सोपान बने हुये थे। जल को देखकर नर्मदासुन्दरी के हृदय ने कहा—जल अमृत से भी अधिक मूल्यवान् है, प्रकृति की अद्भुत देन है, जो बिना मूल्य उपलब्ध होता है और मानव को जीवन प्रदान करता है। जल जीवन है। काश ! यह जल मुझे अपने अन्तराल में समा ले तो नव-जीवन मिल जाये। नर्मदासुन्दरी ने कहा –

"माई मैं प्यासी हूँ" और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये शिविका से उतर पड़ी।

एक सैनिक ने कहा—पी लो, फिर यह नहीं मिलेगा। मद्य इतना मिलेगा कि भूल जाओगी पानी भी कोई चीज होती है। वह उस वापिका में उतरी, ऐसा लगा जलपरी जल में प्रवेश कर रही हो, जल के समीप पहुँच-कर उसने जल पीने का उपक्रम किया और जल में गिर पड़ी।

सैनिकों में खलबली मच गई। डूबने के पूर्व ही सैनिकों ने उसे निकाल लिया। जल से बाहर आते ही उसने विकराल रूप से हँसना प्रारम्भ कर दिया। वह हँसती रही, फिर रोना प्रारम्भ किया तो रोती ही रही। वह कभी हँसती कभी रोती। वस्त्रों को स्थान-स्थान पर उसने दाँतों से फाड़ डाला। श्रृंगार नष्ट कर लिया शरीर के आभूषण एक-एक करके फेंकना प्रारम्भ कर दिया। उसकी इन विक्षिप्त के समान चेष्टाओं को देखकर पथिक रुक गये, बालकों की भीड़ एकत्र हो गई। पालकी में बैठना उसने अस्वी-कार कर दिया। पालकी खाली चल रही थी। कहार अब भी अपनी अभ्यस्त ध्वनि कर रहे थे। सैनिकों से घिरी नर्मदासुन्दरी चली जा रही थी। सैनिक हतबुद्धि से उसे देख रहे थे। लोग उत्सुकतावश सैनिकों से पूछ रहे थे, इसने क्या अपराध किया है, सैनिक क्या उत्तर देते? चुप थे। और नर्मदासुन्दरी अनर्गल प्रलाप कर रही थी--

"एक खप्पर खून, सौ लाशें, सौ कलश मद्य लाओ। शीघ्रता करो। अन्यथा बब्बरकुल नष्ट हो जावेगा!"

× × ×

बब्बरदेश के अधिपति उस अदृष्टपूर्व रूप से नेत्रों को सफल करने के लिए व्यग्र थे। आतुर मन से प्रतीक्षा कर रहे थे। अपने वासनाभवन के वातायन तक जाते और फिर लौट आते। तभी उन्होंने सैनिकों को जर्जर वस्त्रों में निरर्थक वाक्यों का उच्चारण करती हुई युवती को लाते देखा। वे चौंक पड़े-क्या श्रेष्ठि मित्र ने परिहास तो नहीं किया? सैनिकों ने कक्ष में प्रवेश किया। नृपति ने ध्यानपूर्वक युवती के अंगों को निहारा, उन्हें विश्वास हो गया कि श्रेष्ठि ने सत्य ही कहा था कि रूप अनुपम है, पर इस पगली से सुख पाने की आशा व्यर्थ है।

युवती चिल्ला रही थी--एक खप्पर खून, सौ लाशें, सौ कलश मद्य लाओ, शीघ्रता करो अन्यथा बब्बरकुल नष्ट हो जायेगा।

राजा ने कुशल व अनुभवी वैद्यों को बुलाया। मन्त्र-तन्त्र विद्या के ज्ञाता लोगों से भी नर्मदासुन्दरी का उपचार कराया, पर सब विफल रहा। अन्त में राजमहल से उसे मुक्ति मिल गई। अब वह स्वतन्त्र थी, इच्छानुकूल

घूम सकती थी, वास्तव में वह जितनी स्वतन्त्र थी, उतनी ही परतन्त्र और विवश थी। पागलपन का अभिनय बन्द नहीं कर सकती थी, लोग उससे भयभीत थे, कोई उसकी ओर कुदृष्टि से देखने का साहस भी नहीं करता था। उसे विश्वास था कि पागलपन के अभिनय की समाप्ति करते ही रूप के लोभी चीटियों की तरह उस पर टूट पड़ेंगे, उसकी सुरक्षा समाप्त हो जायगी। वह पागलपन के अभिनय का पूर्ण निर्वाह कर रही थी। श्मशान में जाती और चिल्लाती—

"मूर्खो जीवित व्यक्ति को जला दिया! मैं तुम्हारे पापों की शान्ति के लिए प्रार्थना करती हूँ।" और श्मशान में ही ध्यान लगाकर बैठ जाती, किन्तु उसने किसी नारी के प्रति एक शब्द भी नहीं कहा, खेलते बालकों को उसने कभी डराया नहीं, जहाँ कहीं से मिष्ठान्न आदि प्राप्त करती, खेलते बालकों में बाँट देती। वस्त्र–भोजन जो भी मिलता निर्धन बालकों में वितरित कर देती। बब्बरकूल की दुर्गन्धयुक्त गलियों में घूमती। वह श्रेष्ठियों से कहती—

"अपने परिवार के एक दिन के भोजन के बराबर व्यय दे"—

पहले लोग दुत्कार देते—भाग जा पगली किन्तु नर्मदासुन्दरी अब विकराल हँसी हँसती और कहती—"सेठ! मरघट में मशान जगाऊँगी। एक खप्पर खून तेरे परिवार से माँगूँगी। बोलो—व्यय देता है या खून देगा!" पहले लोगों ने भय से दिया, अब जिसके द्वार चली जाती, वह अपना भाग्य सराहता, सबको ज्ञात हो चुका था कि वह गरीबों की गलियों में जाती है। भूखे रोगग्रस्त लोगों में बाँटती है। बच्चों को प्यार करती है, जब भी जहाँ से निकलती बच्चे उसे खप्परवाली देवी कहकर पुकारते। अभाव-ग्रस्त दीन–हीन उसकी आतुरता से प्रतीक्षा करते। यदि विलम्ब हो जाता तो कहते—आज खप्परवाली देवी नहीं आई। बब्बरकूल के बच्चे उसका जीवन थे, उनके साथ उसे पागलपन का अभिनय नहीं करना पड़ता था, बच्चे उसे प्यार करते—कोई उसे पगली कह देता तो लड़ने तैयार हो जाते और कहते वह तो खप्परवाली देवी है।

रात्रि में नर्मदासुन्दरी थक जाती। मग्न जिन देवालयों में जाती। शरीर शुद्धि कर स्वाध्याय करती। वह इच्छाओं के निरोध का अभ्यास कर रही थी, रूप के दुर्भाग्य का उसे पूर्ण ज्ञान हो चुका था। मरघटों में जाते-जाते देह की नश्वरता का उसे पूर्ण ज्ञान था। रात्रि और प्रातः में वह तीर्थंकरों की भक्ति करती। बाल–रश्मियों के जन्म के पूर्व से वह भक्ति-गीत गाती।

एक दिन बब्बरकूल की सीमा के बाहर एक राजपथ के निकट के देवालय के प्रांगण में गा रही थी —

संयुक्त हैं जल-छीर दोनों
विभक्त हैं जिस भाव से,
है आत्मा चिर भिन्न वैसे
बाह्य के आकार से।
व्यवहार से संयुक्त केवल
क्षीर के संग नीर है।
भूतार्थ से दर्शन करो—
निज आत्म में महावीर है ।।

इतने में एक श्रेष्ठि का रथ निकला। उसके पीछे अनेकों रथ चले आ रहे थे। श्रेष्ठि जिनदास ने भग्न देवालय से आते हुए संगीत के स्वर सुने। वे गीत की अंतिम पंक्ति ही सुन सके—

"भूतार्थ से दर्शन करो, निज आत्म में महावीर है।"

उन्होंने अपना रथ रोका, देखा एक पल्लवित आम्रवृक्ष के नीचे एक लावण्यमयी युवती बैठी है। स्वाध्यायरत युवती को देखकर लौट आये। निर्जन एकांत में साधना! वे नारी के इस हृदय को समझ न सके। श्रेष्ठि लौटे और रथ में बैठकर नगर में आये और एक प्रतिष्ठित अतिथिगृह में डेरा डाला। स्नान कर बहुमूल्य वस्त्र धारण कर रथ में बैठ कर हीरों के क्रय-विक्रय के सन्दर्भ में चर्चा करने बब्बरपति के राजमहल की ओर जा रहे थे। मार्ग में उन्होंने सुना—'एक खप्पर खून दो, सौ लाशें दो सौ घड़े मद्य दो' अन्यथा बब्बर-कूल नष्ट हो जायेगा। 'उसके पीछे बच्चे खप्परवाली देवी—खप्परवाली देवी कह कर चिल्ला रहे थे। श्रेष्ठि जिनदास आश्चर्य में डूब गये। उनके अधरों पर प्रभाती-राग में सुनी पंक्ति उतर आई। भूतार्थ से दर्शन करो ····

उन्होंने बहुत सूक्ष्मता से पगली युवती के प्रलाप को सुना और उसके क्रियाकलापों का अध्ययन किया और सोचा कि वह युवती विक्षिप्त नहीं हो सकती। श्रेष्ठि रथ से उतर पड़े और मार्ग में जाकर खड़े हो गये और बोले— ठहरो!

नर्मदासुन्दरी ने देखा, समक्ष एक श्रेष्ठि खड़े हैं। उत्तर दिया—सम्पत्ति के दास! भाग जा भाग जा। "श्रेष्ठि कुछ कहते इसके पूर्व लोगों ने कहा—

श्रीमान् आप परदेशी हैं, इस विक्षिप्त युवती को नहीं जानते। यह खप्परवाली देवी है। श्रीमान् जाने दें। जिसे यह वरदान दे दे वह धन्य हो जाय।

श्रेष्ठि जब चले थे, तब उनके मित्र वीरदास ने कहा था कि बब्बरकूल में उनकी भतीजी को एक गणिका फुसला कर ले गई थी, हो सके तो उसे खोजना। उसको पहचानने में अधिक श्रम नहीं करना पड़ेगा, वह अनुपमेय रूपसी और विलक्षण स्वरमण्डल की धनी है। श्रेष्ठि को लगा कि वह अपने मित्र की भतीजी को खोजने में सफल हो गया है। उसने खप्परवाली देवी की ओर देखकर कहा—

देवी। वीरदास के मित्र जिनदास को भी आशीष दें। वरदान दें।

नर्मदासुन्दरी श्रेष्ठि के मनोभाव को समझ गई, सतर्कता से बोली—

"भाग जा ! भाग जा ! अपरिचितों को ऐसे वरदान नहीं देती। वरदान ही लेना है तो साहसपूर्वक गोधूलि वेला में स्मशान के समीप सरिता-तट पर बने भग्न देवालय में आना।"

श्रेष्ठि और नर्मदासुन्दरी अपने-अपने मार्ग पर चले गये।

× × ×

सन्ध्या समय स्मशान में हलकी-हलकी कालिमा फैल रही थी, कहीं लाशें जल रही थी कहीं अँगारों के ढेर पड़े थे। स्थान-स्थान पर शवों के अग्नि-संस्कार से अवशिष्ट राख के ढेर पड़े थे। कबरबिज्जु की कर्कश ध्वनि सुनाई पड़ रही थी। श्रेष्ठि ऐसे स्थान पर कभी अकेले नहीं गये थे—चौंक पड़े, पर साहस कर बढ़ते गये। स्मशान के दायीं ओर उन्हें कुछ खण्डहर दिखाई दिये। वे खण्डहरों की ओर बढ़े। सहसा उन्हें सुनाई दिया—

"यहाँ खप्परवाली देवी का राज है, घबरा मत !"

श्रेष्ठि पहुँचे—उसकी करुण अवस्था, अनुपम धैर्य और बुद्धिमत्ता देखकर उनका वात्सल्यभरा हृदय रो पड़ा ! बोले बेटी-बेटी नर्मदा ! नर्मदा ने वर्षों बाद स्नेह और आत्मीयता भरा सम्बोधन सुन अनायास ही हाथ फैला दिये। श्रेष्ठि ने नर्मदासुन्दरी को अपने अंक में समेट लिया।

श्रेष्ठि सोच रहे थे कि इस साहसी युवती ने कितने कष्ट उठाये, कैसा कैसा अभिनय किया, उनकी आँखें द्रवित हो उठी। एक-दूसरे से अपरिचित पर आत्म-विश्वास में कैसा परिचय छिपा हुआ था। नारी और पुरुष तन

एक-दूसरे से सटे हुए थे, पर तन तो मात्र निमित्त है, मन तो दोनों के पवित्र थे। अपरिचित पुरुष का आलिंगन नारी को पिता के वात्सल्यपूर्ण आलिंगन सा जान पड़ रहा था और पुरुष को लग रहा था कि जैसे उसकी अभागिन बेटी वर्षों बाद अपने दुःखों को स्नेहभरी गोद में आँसुओं के रूप में अर्पित कर देना चाहती है।

सुबह श्रेष्ठि का सज्जित रथ बब्बरकूल के प्रमुख बाजारों से जा रहा था। स्वच्छ धवल वस्त्र पहिने नर्मदासुन्दरी बैठी थी। लोग आश्चर्य और कुतूहलभरी दृष्टि से देख रहे थे, उसका अनुपमेय रूप। श्रेष्ठि ने कहा–

'भृगुकच्छ में अपने पति की सम्पन्नता देखोगी,तो चकित रह जाओगी। सम्पदा पूर्व से अब असीम हो गई है, नवनिर्मित पतिगृह देखोगी, तो चकित रह जाओगी। राजप्रसाद भी उसकी तुलना में तुच्छ हैं।

नर्मदासुन्दरी बोली–"श्रद्धेय सम्पत्ति को देखने वाली आँख पथरा चुकी है, भोगने वाली वृत्ति पागलपन का अभिनय करते-करते मर चुकी है। अभी कुछ मुद्राएँ दे सकें तो कृपा होगी।

जिनदास ने कहा–कैसी बातें करती हो, बेटी! कितनी मुद्राएँ चाहिये ?

रथ बब्बरकूल की गन्दी वीथिकाओं से गुजरा। वीथिका में भीड़ लग गई। उसका रूप, यौवन और सम्पन्नता सभी के विस्मय का विषय बनी हुई थी। नर्मदासुन्दरी, अनेक जीर्ण-शीर्ण कुटियों में गई और मुट्ठियाँ भर-भर कर रजत और स्वर्ण मुद्राएँ दान में देने लगी। वह जिनके मध्य वर्षों रही उनके आँसू पोंछ देना चाहती थी, उनके आशीष बटोर लेना चाहती थी। श्रेष्ठि का सज्जित रथ, रक्षकों का रथ, और मालवाहक रथों को देखकर आज किसी को खप्पर वाली देवी कहने का साहस नहीं हुआ। एक चपल बालिका ने कहा–जीजी! नर्मदासुन्दरी बोली–"जीजी नहीं खप्परवाली देवी' और रथ आगे बढ़ गया।

× × ×

भृगुकच्छ पहुँचने पर श्रेष्ठि जिनदास के साथ नर्मदासुन्दरी के लौटने की सूचना पाते ही पतिगृह से सभी लोग उसे लेने वहाँ आ गये। श्रेष्ठि के भवन के आगे रथों, तुरंगों और पालकियों का मेला सा लगा था। श्रेष्ठि जिनदास सभी को नर्मदासुन्दरी की कथा सुना रहे थे। नर्मदासुन्दरी का आख्यान! वह पीड़ा–भरा आलेख था, जिस पर आँसुओं, उच्छ्वासों की कथा और दुर्भाग्य व्यथा अंकित थी। नर्मदासुन्दरी का पति महेश्वरदत्त लज्जित सा एक ओर

ग्रांखें झुकाये खड़ा था। नर्मदासुन्दरी सोच रही थी, पाप को कितने समीप से देखा है, वासनाभरी उच्छ्वासों को कितने समीप से सुना है मद्य के ! व्यसन की कुरूपता को, तद्जनित वासना को कितने समीप से देखा है, पर सौभाग्य से किसी पापवृत्ति ने मुझे छुग्रा नहीं। ग्राकर्षित भी नहीं किया। रूप के ग्रन्तिम परिणाम को मुझसे ग्रधिक किसने देखा है ? स्मशान में जलती रूप-कुरूप लाशें लगता है, ग्राज भी मेरे पास मंडरा रही हैं, ग्राज भी कह रही हैं, नर्मदा ! हमारी तरह तू भी शेष हो जायेगी। काल की गति को न कोई रोक सका न पकड़ सका। वह चिन्तन में डूबती गई ग्रौर सहसा बोली—देवालय जाऊँगी। तीर्थंकर महावीर की वीतरागी प्रतिमा के दर्शनों की संचित प्यास बुझाऊँगी। सभी ने कहा—गृहप्रवेश के पूव देवालय जाना ग्रावश्यक है। जिन देवालय में तीर्थंकर महावीर की वीतरागी प्रतिमा के दर्शन कर विभोर हो उठी, उसके ग्रधरों से बरबस फूट पड़ा—

है ग्रात्मा कर्त्ता ग्रौर भोक्ता,
बात निश्चय से सनी।
ज्यों शोधती है मैल,
हीरे का, हीरे की कनी।

देवालय से दर्शन कर लौटी। रथ सज्जित खड़ा था, पर वह रथ की ओर न जाते हुए जिनदेवालय के समीप सुहस्तिसूरि के ग्राश्रम की ओर चल पड़ी। दिगम्बर श्रमण सुहस्तिसूरि पद्मासन में बैठे थे। पास ही मोरपंखों की पिच्छी ग्रौर कमण्डल रखा था। नर्मदासुन्दरी ने दिगम्बर श्रमण को नमन किया। चरणरज ली ग्रौर बोली—

"हे स्वामी! प्रज्ञा के महान् शिल्पी ग्रात्मसाक्षात्कार की ग्रनुपम निधि तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर के शाश्वत मार्ग पर चलने की मंगल दीक्षा दें।"

श्रमण सुहस्तिसूरि ने ग्रपनी निर्विकारी दृष्टि उठाई और कहा—तथास्तु !

"जीवन यदि प्रथम स्वर है, तो मृत्यु अन्तिम। जीवन का संगीत प्रथम स्वर से अन्तिम स्वर तक ध्वनित होता रहता है। पर क्या वास्तव में मृत्यु अन्तिम छोर है? क्या जीवन के संगीत को अन्तिम छोर से आगे सुरक्षित नहीं रखा जा सकता?"

दुर्दिन की घटा : सौभाग्य की दामिनी

महाशुभ्र प्रासाद के सज्जित विशाल कक्ष में स्थित प्राची दिशा के गवाक्ष से अंशुमाली की अरुणिम रश्मियों ने झांका। कक्ष की स्वामिनी चन्दनबाला जाग उठी थी। सद्यस्नाता राजकुमारिका चन्दनबाला के घने श्यामल केशों से नन्हीं-नन्हीं जल की बूंदें उतर रही थी। अंगों का सौष्ठव, रूपसी राजकुमारी की ध्यानमग्न निश्चलता उसे कुशल शिल्पी की कीर्ति का आधार श्वेत प्रतिमा प्रमाणित कर रही थी। सघन अराल अलकावलि में टपकने वाले जलबिन्दु ऐसे प्रतीत होते थे, मानों वह देवी की प्रतिमा का अभिषेक कर रहे हों। वह सौन्दर्य की पुञ्जीभूत प्रतिमा थी। उसका अप्रतिम सौन्दर्य युग में चर्चा का विषय था। उसका पावन—सौन्दर्य नेत्रों को चन्द्रिका का सा आह्लाद और शीतलता प्रदान करता था, पर चन्दनबाला की दृष्टि देह पर नहीं आत्मा पर थी, क्षणभंगुर भौतिक सौन्दर्य से परे शाश्वत् आत्म-सौन्दर्य पर थी। रूपसी चन्दनबाला स्वाध्याय में निरत थी।

जीवन यदि प्रथम स्वर है, तो मृत्यु अन्तिम। जीवन का संगीत प्रथम स्वर से अन्तिम स्वर तक ध्वनित होता रहता है। पर क्या वास्तव में मृत्यु अन्तिम छोर है ? क्या जीवन का संगीत अन्तिम छोर से आगे सुरक्षित नहीं रखा जा सकता ? प्रत्येक वस्तु उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य की सत्ता से लिपटी हुई है। सामान्य दृष्टि वस्तु के उत्पाद, व्यय स्वरूप तक ही पहुँचती है, पर जिन्होंने शाश्वत तत्त्व को पहचाना, जिनकी दृष्टि ध्रौव्य तत्त्व पर गई, वे जन्म-मृत्यु से मुक्त हो शाश्वत् हो गये।

चन्दनबाला के हृदय ने कहा—

चन्दना! संसार के सभी सुख सभी आकर्षण मृग-जल-सम है। इन्हें न पूर्णतः कोई पा सका न भोग सका। प्रज्ञा की छैनी से आत्मा की ऐसी प्रतिमा गढ़ जैसी वैशाली के राजकुमार वर्द्धमान गढ़ रहे हैं। रूप कामदेव के समान है, पर दृष्टि रूप पर नहीं। नारी के हृदय में ममता वात्सल्य और करुणा के अतिरिक्त वर्द्धमान ने कुछ नहीं देखा। वर्द्धमान की वाणी संगीतमय है, वे लोककल्याण के परम आदर्श हैं। जहाँ भी उनके चरण पड़ते हैं, माटी चन्दन सी महकती है। आकाश उनके जयघोष से गूंज उठता है। यज्ञों की उठती हुई लपटें शान्त हो जाती हैं। गढ़ ! कुछ ऐसी प्रतिमा गढ़ जैसी वर्द्धमान महावीर

गढ़ रहे हैं ! सहसा बालरश्मियों ने चन्दनबाला के सुकोमल अंगों का स्पर्श किया। सखियों ने चन्दनबाला को पुकारा। चन्दना के चिन्तन का क्रम भंग हो गया। सखियाँ बोलीं –

"चन्दना! चलो राजोद्यान में चलें। कलियों की मनुहार करें। पुष्पों की वेणी बांधें। कोयल से मधुर स्वर और भी साधें"। चन्दना और सखियां राजोद्यान में गयीं। पर्याप्त समय तक राजुल–नेमि की पावन पुण्य गाथाओं से भरे गीत गाती रहीं और परस्पर हास-परिहास करती रहीं। सहसा सघन बादलों ने आकाश को घेर लिया। हल्की-हल्की बूंदें पड़ने लगी। चन्दना अपनी सखियों सहित वर्षा से बचने के लिये तीव्र गति से एक ओर जा रही थी। सहसा आकाश मार्ग से जाते हुए एक विद्याधर की दृष्टि सखियों से घिरी चन्दनबाला पर पड़ी। चन्दनबाला के अद्भुत सौन्दर्य ने विद्याधर की वासना को उद्दीप्त कर दिया। उसने विमान को आकाश से पृथ्वी पर उतारा और बलात् चन्दना को अपहरण कर ले गया। समर्थ वज्जिगणतन्त्र राज्य के अधिनायक चेटक के राजभवन में शोक छा गया। चन्दनबाला को खोजने के अविलम्ब अनेकों प्रयत्न किये, पर सब विफल !

चन्दना को विद्याधर ने एक सघन वन में छोड़ दिया। उसने सोचा चन्दनबाला के निवास की व्यवस्था कर आकाश मार्ग से शीघ्र लौट आऊंगा। चन्दनबाला विद्याधर की वासनाभरी दृष्टि का अर्थ समझ चुकी थी। उसने विद्याधर की प्रतीक्षा नहीं की और चलती ही रही। कौशाम्बी की एक रूपाजीवी की पारखी दृष्टि ने उसकी सौन्दर्य-निधि को निरखा और उसे रूप के हाट में पहुँचा दिया।

चन्दना के जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों के छिद्र चन्दना के दुर्भाग्य की कथा सुना रहे थे। रूप की हाट में अनेकों युवतियां विक्रय हेतु उपस्थित थीं। उनके दुर्भाग्य की कथा सुनने वाला कोई न था। चन्दनबाला की बोली एक हजार दीनार से प्रारम्भ हुई। सहसा श्रेष्ठि वृषभ-दत्त इसी हाट के समीप से रथ में बैठ कर निकले। चन्दनबाला का अछूता कौमार्य अनुपम रूप उनकी दृष्टि से छिपा न रह सका। उसके बहुमूल्य किन्तु जीर्ण-शीर्ष पर जटित मोतियों का मूल्य उनकी व्यावसायिक दृष्टि से छिपा नहीं रह सका। श्रेष्ठि दुर्भाग्य से निःसंतान थे। चन्दनबाला को देखकर उनके हृदय में वात्सल्य जन्मा। आन्तरिक प्रेरणा के वशीभूत हो श्रेष्ठि रथ से उतरे और अपनी प्रतिष्ठा के विपरीत रूप के हाट में जा खड़े हुए। श्रेष्ठि वृषभदत्त की प्रतिष्ठा से उपस्थित क्रेता-समूह में से अनेकों लोग परिचित थे। श्रेष्ठि

का हाट में पहुँचना असाधारण घटना थी। लोक चकित थे कि उनके संस्थान पर दिनभर सदाव्रत चलता रहता है, अनुपम जिन देवालय के निर्माण से जिनकी कौशाम्बी में ख्याति थी। दान करने में जिन्हें संकोच न था ऐसे धर्मात्मा और साधु पुरुष का रूप की हाट से क्या प्रयोजन ?

श्रेष्ठि वृषभदत्त सोच रहे थे किसी राजकन्या अथवा सम्पन्न श्रेष्ठि-कन्या किसी दुर्भाग्य में फंसकर रूप के हाट में खड़ी है। इस रूपसी अभागिन कन्या का उद्धार करना चाहिये। श्रेष्ठि ने चन्दनबाला की सम्पूर्ण देह पर दृष्टि डाली। उसकी आँखों में झांका, उनके विश्वास की पुष्टि हो गई कि यह कुलीन युवती अनुपम निर्दोष सौन्दर्य रत्न है।

रूप के हाट में मुख्य गणिका ने श्रेष्ठि पर व्यंग्य किया—

"इस आयु में भी श्रीमान की दृष्टि सशक्त है। वाह ! वाह ! क्या उचित समय पर आये हैं। लाख दीनार भी खर्च करें तो ऐसा रूप न मिले। पर यह तो हाट है लाखों का माल कोड़ियों में बिकता है।"

श्रेष्ठि वृषभदत्त ने कहा—"बकवास बन्द करो"

गणिका अपनी जीभ को दाँतों में दबाते हुए बोली—"वाह ! वाह ! लाला रूप के हाट में खड़े हो, बिना मूल्य ही रूप-सुधा का पान कर रहे हो और ऊपर से क्रोध भी ! मैंने ऐसा क्या कह दिया ?'

श्रेष्ठि सोच रहे थे गणिका सच ही तो कह रही है। मैं रूप की हाट में क्रेता की भाँति खड़ा हूँ और सत्य ही वह लाखों की वस्तु कोड़ियों में बेच रही है। श्रेष्ठि ने कहा—

'रूप के हाट की स्वामिनि! व्यर्थ की बातों को जाने दो। बोलो-एक बात कर, बताओ उस युवती का क्या लेगी ?'

गणिका ने कहा—

'इस बाजार के नियम बड़े कठोर हैं। यहाँ माल बोली पर बिकता है। बोली समाप्त, दाम नगद। तुम भी बोलो !

श्रेष्ठि ने कहा—अच्छा 5000 स्वर्ण दीनार।

गणिका चौंक पड़ी—'स्वर्ण दीनार 5000 स्वर्ण दीनार ! ले जा सेठ ले जा। इस रूप की हाट में पाँच हजार दीनार देने वाला और कोई नहीं है। गणिका कहती रही-लाला ! मैंने सत्य ही कहा था कि तेरी आँख बड़ी पारखी है ! ऐसा रूप, ऐसा यौवन फिर कभी बाजार में आया तो किसी को हवा भी नहीं लगने दूँगी। आज से तुम मेरे सबसे पक्के ग्राहक हुए।'

श्रेष्ठि आगे–आगे और चन्दनबाला पीछे–पीछे चली आ रही थी। वह सोच रही थी। कर्मों की विचित्र दशा है। विद्याधर के जाल से निकली तो गणिका के जाल में आ उलझी और अब यह श्रेष्ठि पाँच हजार स्वर्ण दीनार देकर ले जा रहा है। अब तीर्थंकर महावीर के नाम का ही सम्बल शेष है। मन ही मन में वह बारम्बार तीर्थंकर महावीर के नाम का उच्चारण करती हुई श्रेष्ठि के पीछे-पीछे चली जा रही थी। रथ के निकट श्रेष्ठि और चन्दनबाला के पहुँचते ही रथवाहक ने दोनों पर कुतूहलभरी दृष्टि डाली। आश्चर्य से वह कभी श्रेष्ठि और कभी चन्दनबाला की ओर देखता। रथ के समीप पहुँच कर श्रेष्ठि ने पूछा–क्या नाम है ?

क्षीण स्वर में उत्तर मिला 'चन्दनबाला'।

श्रेष्ठि ने कहा जैसा नाम वैसा रूप। मुझे विश्वास है कि चन्दनबाला वासना के विषधरों में भी महकी होगी। आ पुत्री ! आ रथ में पीछे बैठना!

चन्दनबाला ने विस्मयभरी दृष्टि श्रेष्ठि पर डाली–'उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि यह श्रेष्ठि पाँच हजार स्वर्ण दीनार देकर अपनी पुत्री बनाने लाया है।

श्रेष्ठि ने चन्दनबाला के बिना कहे ही उसके हृदय की बात जान ली और कहा

'पुत्री ! पावन चेहरा, निश्छल नयन, वस्त्र तुम्हारे श्रेष्ठ चरित्र और उच्चकुल का परिचय बिना कहे दे रहे हैं। दुर्दिन सभी पर आते हैं बेटी ! तेरे दुर्भाग्य की कथा समाप्त हो चुकी है। आज इसी क्षण से तू तीर्थंकर महावीर के अनुयायी वृषभदत्त की पुत्री है।

चन्दनबाला के हर्ष का पारावार न रहा। उसे ऐसा लगा जैसे युग-पुरुष तीर्थंकर महावीर ने आशीषभरा हाथ उसके शीश पर रख दिया हो और उसकी आराधना स्वीकार कर ली हो।

रथ एक विशाल अट्टालिका के आगे रुका। श्रेष्ठि वृषभदत्त ने चन्दन-बाला सहित गृह में प्रवेश किया। श्रेष्ठि-पत्नी ने चन्दनबाला को देखकर कहा स्वामी–इस घर में दास-दासियों की क्या कमी थी जो एक और ले आये। श्रेष्ठि ने कहा—

इस घर में दास-दासियों की कमी नहीं है, इसलिए दासी नहीं पुत्री ले आया हूँ। दासी की ओर संकेत कर बोले–पुत्री चन्दनबाला को स्नान कराओ स्वच्छ वस्त्र पहनाओ।

अल्पकाल पश्चात् चन्दनबाला स्नान कर नये वस्त्र धारण कर आयी। श्रेष्ठि पत्नी उसके रूप को देखकर चकित रह गई। चन्दनबाला की दुर्दशा को देखकर पहिले उसकी दृष्टि उसके रूप पर नहीं गई थी। उसने विचार किया इतना रूप इतना यौवन कहीं मेरे स्वामी को छल न ले! क्षणभर में श्रेष्ठि का विगत जीवन चलचित्र की भाँति उसके स्मृति-पटल पर छा गया, पर इस अतीत में एक क्षण भी उसे ऐसा नहीं मिला कि उसके पति परनारी के आकर्षण में बंधे हों। उसने अपने हृदय को धिक्कारा कि अपने चरित्रवान् पति पर शंका करते हुए तुझे लज्जा नहीं आती और वह चन्दनबाला की ओर से आश्वस्त हो गई।

श्रेष्ठि वृषभदत्त तीर्थंकर महावीर के परमभक्त थे और चन्दनबाला ने वर्द्धमान तीर्थंकर सा संवरने-निखरने का संकल्प ले रखा था। पिता-पुत्री प्रातः साथ-साथ स्वाध्याय करते, ऋषभदेव से तीर्थंकर पार्श्वनाथ तक जो प्रचलित श्रुतसाहित्य था उस पर चर्चा करते। चन्दनबाला का धार्मिक ज्ञान देखकर उन्हें परम-संतोष था। ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये पिता-पुत्री एक दूसरे के निकट आते गये। श्रेष्ठि वृषभदत्त के हृदय में चन्दनबाला के प्रति वात्सल्य और चन्दनबाला के हृदय में श्रेष्ठि के प्रति श्रद्धा प्रतिदिन वृद्धिगत हो रही थी।

अकस्मात् ऐसी घटना घटी कि निर्मल जल कीच सा लगने लगा। श्रेष्ठि का पारिवारिक जीवन विषाक्त हो उठा।

एक दिन श्रेष्ठि वृषभदत्त जिन देवालय से लौटे। पैर धुलाने के लिये दासी को पुकारा। दासी गृहकार्य में व्यस्त थी। चन्दनबाला ने कहा—पिताजी मैं जल देती हूँ। श्रेष्ठि एक काष्ठासन पर बैठ गये और चन्दनबाला उनके चरणों पर जल डालने लगी। अकस्मात् चन्दनबाला के केशों को उठाया और उसके पृष्ठ भाग पर फेंक दिये। इस दृश्य को एक दासी देख रही थी। दासी ने इस घटना में अपनी दासी बुद्धि का रंग मिलाकर श्रेष्ठि पत्नी को सुनाया। मन की गति विचित्र है—पुत्री सौत सी लगने लगी। विवेक सौतिया गन्ध पाकर अदृश्य हो गया। श्रेष्ठि पत्नी के हृदय में शेष रह गई मात्र प्रतिशोध की भावना।

चन्दनबाला के दुर्भाग्य से श्रेष्ठि को व्यावसायिक कार्यों से बाहर जाना पड़ा। श्रेष्ठि पत्नी इस क्षण की प्रतीक्षा में थी। श्रेष्ठि-पत्नी ने चन्दनबाला को बुलाया और कहा—

चन्दनबाला—क्या यह रूप, यौवन और नागिन से केश लेकर तू मेरे सुखों को उसने आई है ?

चन्दनबाला ने कहा —माँ आप कैसी बातें कर रही हैं !

प्रतिशोध की अग्नि में जलती हुई श्रेष्ठि—पत्नी ने कुछ नहीं सुना—-न्दनबाला के केशों को कटवाया, हाथों में जंजीर और पैरों में बेड़ी डलवा और अपने गृह के तलघर में चन्दनबाला को बन्दी बना दिया ।

चन्दनबाला श्रेष्ठि वृषभदत्त के तलघर में बन्दिनी की भाँति जीवन तीत कर रही थी । मिट्टी के पात्र में जल और सूप में कोंदो खाने को रखा । तीन दिवस पश्चात् श्रेष्ठि लौटे । घर में प्रवेश किया । उन्हें घर सूना-ना सा लग रहा था । श्रेष्ठि की विशाल अट्टालिका में सभी वस्तुएँ यथावत ी थी, पर ऐसा कुछ था जो नहीं था, जिसे श्रेष्ठि वृषभदत्त की आँखें ाज रही थीं । सहसा उन्हें पुत्री चन्दनबाला का ध्यान आया । श्रेष्ठि ने ानी पत्नी से पूछा—पुत्री चन्दनबाला कहाँ है ?

श्रेष्ठि—पत्नी ने कहा—पुत्री ! पुत्री! पुत्री! अब भी मिथ्या बोलते हैं ! न्दनबाला तुम्हारी पुत्री है ! अब मेरी आँखों को धोखा नहीं दे सकते !

वृषभदत्त की आँखों में क्रोध उतर आया बोले—-मूर्ख पहिले यह बता न्दनबाला कहाँ है ? श्रेष्ठि—पत्नी ने कहा—मुझे क्या पता !

श्रेष्ठि ने विशाल अट्टालिका का प्रत्येक कक्ष देख डाला पर चन्दनबाला ीं मिली ।

श्रेष्ठि ने दास-दासियों को बुलाकर पूछा—-चन्दनबाला कहाँ है ?

सभी ने एक स्वर में कहा—-पता नहीं ।

तब श्रेष्ठि ने कहा—-ठीक है आज से सभी को सेवामुक्त करता हूँ : कोई जाये नहीं । मैं दण्डनायक को बुलवाता हूँ । मेरी अपेक्षा वह सरलता चन्दनबाला का पता ज्ञात कर लेगा । एक दासी भय से काँपने लगी और सने कहा—-चन्दनबाला अट्टालिका के तलघर में बन्दी है ।

श्रेष्ठि वृषभदत्त ने तलघर में प्रवेश किया और चन्दनबाला की ाशा देखकर तलघर के राजमार्ग की ओर खुलने वाले द्वार से तीव्र गति से हार को बुलाने चले गये ।

चन्दनबाला ने तीन दिन पश्चात् प्रकाश के दर्शन किये । सहसा दूर से सके कानों में क्षीण स्वर गूंजा—भगवान् महावीर की जय, तीर्थंकर वर्द्धमान हावीर की जय । उसने अपने आप से कहा—क्या मुझे तीर्थंकर महावीर के र्शनों का सौभाग्य प्राप्त होने वाला है ? उसने राजपथ पर दूर तक देखा । खा कि परमज्योति महावीर आ रहे हैं । उसके नेत्र परमज्योति मासोपवासी र्थंकर महावीर के पावन रूप को निर्निमेष देखते रहे । सहसा तीर्थंकर की ञ्जलि पर चन्दनबाला का ध्यान गया और उसके मुख से निकला—

अरे ! भगवान आहार को निकले हैं। चन्दनबाला के हृदय में आहार देने की साध जागी–पर हाथों में हथकड़ी, पाँवों में बेड़ियाँ, कोदों के अतिरिक्त उस कक्ष में रखा ही क्या था ?

वर्द्धमान महावीर श्रेष्ठि वृषभदत्त की अट्टालिका के समीप आये। चन्दना ने अपने बेड़ियों से बँधे पाँव धीरे-धीरे द्वार से बाहर निकला। प्रभु को देखकर उसके अधर मौन न रह सके। उसने रुंधे कंठ से कहा–हे स्वामी नमोस्तु ! हे स्वामी नमोस्तु ! हे स्वामी नमोस्तु ! आहार जल शुद्ध है।

वर्द्धमान स्वामी रुके। चन्दनबाला का मधुर कंठ–हे स्वामी नमोस्तु का पाठ दोहराता रहा। प्रभु के चरण श्रेष्ठि के सोपान पर पड़े। सधे हुए पाँवों से प्रभु सोपान से ऊपर आये। चन्दना का एक पाँव कारागृह के भीतर–एक पाँव बाहर था। हाथों में हथकड़ियाँ पाँवों में लौह की बेड़ियाँ पड़ी थीं। इस दुर्लभ सम्मान को पाकर चन्दना आत्मविभोर हो उठीं। उसके अधरों पर मन्द मुस्कान उतर आयी। उसे लगा कि वह युगों-युगों तक के लिये पुण्य संचित करने वाली है।

प्रभु ने देखा कि सर्व विधि मिल चुकी है पर नयनों में तैरती हुई प्रसन्नता को देख कर उनका बढ़ा हुआ चरण रुक गया। प्रभु लौटने को उद्यत हुए, चन्दनबाला की प्रसन्नता वेदना में परिणत हो गई। आँखों में अश्रु झलक आए। चन्दनबाला ने वेदना–मिश्रित उच्छ्वास छोड़ी। प्रभु रुक गये। चन्दना ने पुनः 'हे स्वामी नमोस्तु' का पाठ श्रद्धापूर्वक दोहराया। प्रभु ने अंजलि खोल दी। प्रभु के अंजलि छोड़ते ही चन्दनबाला के हाथ-पैर बन्धन-मुक्त हो गये। श्यामल घुँघराले केश लहराने लगे। चन्दनबाला सूप में रखे हुये कोदों को प्रभु की अंजलि में रखती जा रही थी। निर्विकारी प्रभु कोदों का आहार कर रहे थे ! आहार पूर्ण होने पर प्रभु ने अंजलि खोल दी।

चन्दनबाला निहाल हो उठी, उसका जीवन धन्य हुआ, युगों-युगों की साधना सफल हुई। वृषभदत्त की बीथिका जय वर्द्धमान ! जय महावीर ! जय चन्दनबाला के जयघोष से गूँज उठी।

चन्दनबाला को शाश्वत सूत्र हाथ में लग गया था। उसे विश्वास हो गया कि जीवन के संगीत को मृत्यु से आगे भी सुरक्षित रखा जा सकता है। अनजाने में बरबस उसके कंठ से अमृत स्वर फूट पड़ा।

यौवन–रूप सभी बीतेंगे।
सब घट नश्वर हैं रीतेंगे॥
वर्द्धमान के पथ अनुगामी।
केवल, मृत्यु को जीतेंगे॥

राजुल ने संयत स्वर में उत्तर दिया, "श्रमण रथ ! वासना प्रथम और वस्त्र पीछे विसर्जित करने थे। तुमने वस्त्रों का परित्याग कर दिया, पर त्याज्य वासनाएं भी तुम्हारे हृदय पर शासन किये हुए है। आदि तीर्थंकर ऋषभदेव से लेकर नेमिनाथ तक का इतिहास त्याग, तप और संयम का इतिहास है। वे इतिहास के पृष्ठों परलोक-कल्याण की अमर गाथाएं छोड़ गये हैं। श्रमण संस्कृति के पुनीत इतिहास को तुम कलंकित करना चाहते हो। श्रमण रथ ! तुम आत्म ज्ञान के तल में खड़े हो–शिखर पर जाओ, जहाँ नेमिप्रभु साधनारत हैं। उनकी साधना को देखो। उनके दर्शन मात्र से तुम्हारी साधना को सम्बल मिलेगा।

तीन यात्री : एक गन्तव्य

गिरिनगर के राजभवन के अन्तःपुर में रत्नजटित धवल शाटिका
ारण किये नववधू के वेश में सज्जित उग्रसेन की दुहिता, रूपसी राजुल अश्रु-
नात व विवर्ण मुख लिए शोक-नदी में निमग्न थी। यौवन के संचित स्वप्न
बिखर चुके थे। घनीभूत पीड़ा के कारण मोती से अश्रु नयनद्वार से झर कर
पोलों पर बिखर रहे थे और बहुमूल्य साड़ी को भिगा रहे थे। अतृप्त भाव-
ाओं के पास से तृप्ति और प्यासे अधरों के पास से जल-पात्र दूर जा गिरा।
ारात द्वार से लौट गई थी ! राजुल के हृदय-सागर में विचारों के आवर्त-
ववर्त उठ रहे थे। प्रभु ने पशुओं की मूक प्रार्थना स्वीकार कर मौन वरदान
दिया। एक पाणिग्रहण के लिए कोटि निरीह और निरपराध पशुओं का
ध ! प्रभु को मूक पशुओं के प्रति इतनी दया आई, कि वे भूल गये कि कोई
ारी हृदय में सुकोमल भावनाएँ संजोए, हाथों में मेंहदी और पाँवों में महावर
वाए उनकी प्रतीक्षा में व्याकुल है ! राजुल तू बड़ी अभागिन है ! संकल्पों
नेमिप्रभु को पति रूप में वरण कर लिया किन्तु कर्मों ने विचित्र परिस्थि-
यों में लाकर पटक दिया है। राजुल तू ! बिना पाणिग्रहण के परिणीता है।
ौमार्य अक्षत होते हुए भी अशेष है। तू भावनाओं से नेमिप्रभु के चरणों में
र्पित हो चुकी है। पुरुष को भावात्मक रूप से पतिरूप में स्वीकार करने के
श्चात् कौमार्य शेष ही कहाँ रहता है ! राजुल समर्पिता है, राजुल विवाहिता
अब उसके पास सब कुछ होते हुए भी कुछ शेष नहीं है, जो अन्य पुरुष
ो दे सके। राजुल का स्थान मात्र नेमिप्रभु के चरणों में है। उसका सुख
सकी शान्ति गिरनार के उच्चतम शिखर पर विराजित है। राजुल उसे कैसे
ये !

पुत्री की पीड़ा से माँ का हृदय कराह उठा। त्रस्त से स्वर में स्नेह
ालते हुए बोली—

"बेटी ! वसुधा वरण योग्य क्षत्रिय-रत्नों से विहीन नहीं हुई है। तेरा
वाह नेमिनाथ से भी सुन्दर और श्रेष्ठ राजपुत्र से होगा।"

राजुल ने कातर स्वर में दृढ़ता लाते हुए कहा— माँ उनके विषय में कुछ न कहें वे मेरे चिर आराध्य हैं। उन्होंने जो पथ चुना वह शाश्वत है। माँ क्या यह सत्य नहीं है कि जीवन अध्रुव है। अशाश्वत है। अनेकों दुःखों और उपद्रवों से आक्रान्त है, विद्युत् के समान चंचल तथा जल के बुदबुदे के समान क्षणिक है। कुश की नोक पर पड़े जलबिन्दु के सदृश क्षणभंगुर है। माँ व्यक्तिगत स्वार्थों के पीछे प्रभु को दोष न दें!

माँ इतना सुनकर मौन हो गई। अब सान्त्वना और सहानुभूति के लिये उसके पास कोई शब्द शेष न था।

नेमिनाथ के भ्राता रथनेमि को अब ज्ञात हुआ कि कुमारी राजुल भैया नेमिनाथ के पथ का अनुसरण कर, संसार के सुखों की उपेक्षा कर गिरनार पर्वत पर दीक्षा ग्रहण करने जा रही है, तो वह अनजाने ही व्याकुल हो उठा।

रथ ने आकर राजुल को समझाया, भाभी! भैया तो मुक्ति की खोज में संसार मार्ग से भटक गये। उनकी आशा, उनकी प्रतीक्षा व्यर्थ है। विरक्ति के बीज भैया के हृदय में गहरे जमे हैं। क्या कहूँ भाभी! उनके पावों से लहू रिसता रहा, वसुधा पर कहीं रक्त की बूँदें टपकी, कहीं गाढ़ा रक्त बहा। प्रतीत होता था कि वसुधा के श्रृंगार के लिये मेंहदी और महावर हेतु भैया रक्त का दान दे रहे हों। भाभी! भैया तो वसुधा की चिर कुँवारी कीर्ति नामक कन्या को वरण करने गये हैं। उनकी प्रतीक्षा व्यर्थ है। राजुल ने कहा—

"रथ! प्रभु के हृदय मे प्रणय की अनुभूति, पाणिग्रहण की भावना निर्वासित हो चुकी है। वह तो मुक्ति की खोज में गये हैं, जहाँ न वासना है न विचार, जहाँ न आकांक्षायें है न आकर्षण। जहाँ शेष रहती है पावन वीतरागता! ऐसे महापुरुषों के त्याग, तप और संयम के आधार पर यह वसुधा सुख-दुख की अनुभूति के लिए अस्तित्व में है, अन्यथा कभी भी नरक से अधिक हीन एवं करुण दशा में पहुंच गई होती।

"भाभी! यही मैं कहना चाहता था कि भैया की प्रतीक्षा व्यर्थ है। यदि

बुरा न मानों तो एक बात कहूँ, क्या भैया के स्थान पर मुझे ग्रहण नहीं किया जा सकता ?"

राजुल ने कहा --

"रथ ! उगला हुआ ग्रास और परित्यक्ता नारी ग्रहण करने योग्य नहीं होती । फिर मैं तुम्हारे भैया को छोड़कर अन्य पुरुष को पतिरूप में ग्रहण करने की कल्पना तक को पाप समझती हूँ । रथनेमि अभी-अभी तुमने क्या संबोधन किया था ? भाभी ! बार-बार कहो भाभी ! इस सम्बोधन को सुनने में बड़ा सुख मिलता है । रथ; भाभी को पत्नी के रूप में ग्रहण करने की पाप भावना से बचो । मैंने अपना गन्तव्य निर्धारित कर लिया है । राजुल सदैव नेमिप्रभु की है, सदैव ही उनकी रहेगी । राजुल ने अपना पथ चुन लिया है । वह प्रभु के पथ का अनुसरण करेगी ।

नेमिप्रभु के महाभिनिष्क्रमण के पश्चात् रथनेमि के हृदय में राजुल के प्रति अनुराग जगा था, उसे पूर्ण विश्वास था कि भैया नेमि की दीक्षा के पश्चात् कुमारी राजुल उसे पतिरूप में स्वीकार कर लेगी, पर राजुल के विचार सुन रथनेमि को अपने विचारों को मोड़ना पड़ा । निराशा ने हृदय पर तीव्र प्रतिक्रिया की और रथनेमि का हृदय विरक्ति की कामना करने लगा ।

रक्त सने पाँवों से कुमार नेमि चौदह मील का कंटकीय, दुर्गम, सर्पीला मार्ग चलकर गिरनार के उच्चतम शिखर पर पहुँचे । भौतिक सुख हृदय के भीतर सासें तोड़ चुके थे । आत्म-साक्षात्कार की ओर उनके चरण बढ़ रहे थे। जहां इन्द्रिय सुखों का प्रवेश नहीं, उनकी कोई अनुभूति शेष नहीं । उच्चतम शिखर पर नेमिप्रभु की विचार--शृंखला टूटी । कुमार ने आभूषणों को फेंक दिया, वस्त्र उतार निर्वस्त्र हो गये, नवजात शिशु से पवित्र दिगम्बर वेश में सिद्धों को नमस्कार कर निर्विकारी आत्मा के ध्यान में लीन हो गये ।

नेमिप्रभु गिरनार के शिखर पर विराजित हो चुके थे । कुमार रथ भी गिरनार के तल में बनी हुई गुफा में श्रमण वेश में साधना की तैयारी कर रहे थे और राजुल प्रभु के पथ का अनुसरण करती हुई गिरनार पर्वत के उच्चतम शिखर पर पहुँची । दिगम्बर वेश में साधनारत प्रभु को देखकर उसका हृदय श्रद्धा से भर उठा, हाथ जुड़ गये! राजुल ने श्रद्धा से कहा--हे स्वामी नमोस्तु ! प्रभु मौन थे मौन ही रहे । दिन के मध्य में प्रभु की समाधि टूटी । चरणों के समीप नारी--आकृति को देखकर निर्विकार प्रभु ने कहा--

"कौन हो ? अत्यन्त दुर्गम मार्ग तय करके इस नीरज स्थान में आने का प्रयोजन कहो !"

राजुल ने श्रद्धा से कहा–

"मैं राजुल हूँ।"

नेमिप्रभु ने कहा–

"राजपुत्रि ! तुम्हारा स्थान तो महलों में है इस निर्जन वन में तुम्हारा क्या प्रयोजन ?"

राजुल ने कहा–

"प्रभु यदि राजुल राजकुमारी है तो प्रभु भी संपन्नतम राज्य के राजकुमार हैं।"

नेमिप्रभु ने कहा–

"देवी ! राजकुमार हूँ नहीं, हाँ कभी था पर वह जीवन तो अतीत बन चुका है। राजपुत्र होने की बात को स्मरण रखना भी राजसत्ता से लिपटे रहने के समान है। राजपुत्रि ! मैं मात्र श्रमणसंस्कृति का उपासक श्रमण हूँ। आदि तीर्थंकार ऋषभदेव द्वारा उपदिष्ट शाश्वत पथ का यात्री मात्र हूँ। सन्ध्या सिमटने के पूर्व लौट जाओ। मार्ग दुर्गम और पथरीला है।

राजुल ने कहा–

"प्रभु ! मेरे जीवन के सुखों पर मात्र संध्या ही नहीं छाई–मेरे सुखों को अन्धकारमयी निशा ने डस लिया है और ऐसा डसा है कि अब पुनर्जीवित न हो सकेंगे। अब इस नित्य छाने वाली संध्या और आने वाली रात्रि का क्या भय !"

प्रभु नेमि ने कहा–

"लौकिक जीवन में प्रगति पथ को निराशा आवृत करती है। जिन पीड़ाओं का उपचार कहीं न हो, उन पीड़ाओं की औषधि समय है। समय तुम्हारे सुख स्वप्न सभी लौटा देगा।"

राजुल के नेत्रों में विचित्र सी चमक उभरी। राजुल ने कहा–

"स्वामी ! मेरा सुख, मेरी आकांक्षाएँ तो प्रभु हैं। क्या जीवन में मुझे प्राप्त हो सकेंगे ? नेमिप्रभु की वाणी पूर्व से अधिक गंभीर हो उठी।

"देवि ! वृक्ष से गिरा फल वृक्ष पर नहीं लौटता। श्रमण एक बार पद ग्रहण करने के पश्चात् पद नहीं छोड़ता। मैंने लौकिक सुखों का निदान बताया था। अतीन्द्रिय सुख के अन्वेषण में रत यात्री से लौटने की आशा करना व्यर्थ है राजल !"

"देव ! राजुलभी भौतिक सुखों की लालसा से ऊपर उठ चुकी है। प्रभु मैं दुर्बल नारी हूँ, पर मैंने अपना गन्तव्य निर्धारित कर लिया है। देव के श्रीचरणों के अतिरिक्त मेरा कोई स्थान नहीं। मैंने दृढ़ संकल्प कर लिया है।"

प्रभु ने बीच में कहा --"क्या ?"

राजुल की वाणी आर्द्र हो उठी, उसने कहा--

"देव, आप गिरनार के उच्चतम शिखर पर साधनारत हैं, तो राजुल भी प्रभु के चरणों में गिरनार की उपत्यका में जन्म-मृत्यु के बन्धन काटने का अभ्यास करेगी। प्रभु दीक्षा दें।"

नेमिप्रभु ने कहा--

"पीड़ा और उत्तेजना में बढ़ाये चरण भटक जाते हैं।"

राजुल ने कहा--

"देव ! नारी की संकल्प-शक्ति पर अविश्वास न करें।"

प्रभु नेमि ने राजुल को साध्वी पद की दीक्षा दी, राजुल प्रमुदित हो उठी। उसे लगा जैसे प्रभु ने अपने जीवन-पथ में उसे सहयात्री के रूप में वरण कर लिया है। राजुल को वह क्षण सुखद प्रतीत हुआ। गिरनार के शिखर पर से राजुल लौटी और शिखर के तल पर प्रभु के चरणों में साधना करने लगी।

साध्वी राजुल गुफा के अन्दर जा रही थी, तभी एकाएक वृष्टि होने लगी। वस्त्र भींग गये। गुफा के अन्दर जाकर भींगे वस्त्र को शरीर के अर्द्ध भाग से पृथक् कर निचोड़ने लगी। गुफा पर्याप्त लम्बी थी। सहसा मेघों की गर्जना हुई, विद्युत चमकी। इसी समय गुफा के अन्तिम छोर पर साधनारत रथनेमि की समाधि टूटी। उन्होंने विद्युत् के क्षणिक प्रकाश में राजुल की निरावरण देह--यष्टि को निरखा। कहीं अवचेतन में स्थित राजुल के आकर्षण ने अंगड़ाई ली। मृतप्राय: वासना में पुन: श्वासों का संचरण हुआ। कुछ क्षण को रथनेमि भूल गये कि वे श्रमण हैं। वासना ने विवेक को अभिभूत कर दिया। दुर्दम्य मन की अज्ञात प्रेरणा से वे अन्तिम छोर से चलकर गुफा के प्रथम छोर तक आये और बोले--"राजुल !"

स्वर में प्रणय की स्वाभाविक स्निग्धता घुली हुई थी। राजुल संबोधन सुन ठगी-सी रह गई, उन्हें ज्ञान भी नहीं था कि इस अन्ध गुफा में कोई और भी है, बिना कहे उन्होंने रथ की भावना को समझ लिया। संयत स्वर में उत्तर दिया--

"श्रमण रथ ! वासना प्रथम-वस्त्र पीछे विसर्जित करने थे। तुमने वस्त्रों का तो परित्याग कर दिया, पर त्याज्य वासना अभी तुम्हारे हृदय पर शासन किये हुये है। आदि तीर्थंकर ऋषभदेव से नेमिनाथ तक का इतिहास त्याग, तप और संयम का इतिहास है। वे इतिहास के पृष्ठों पर लोक—कल्याण की अमर गाथाएँ छोड़ गये हैं। श्रमण संस्कृति के पुनीत इतिहास को तुम कलंकित करना चाहते हो, कोई अप्रिय अध्याय जोड़ना चाहते हो ! मानव-मन कैसा अद्भुत स्थान है जहाँ आकर्षण और विकर्षण, वासना और विरक्ति एक साथ रहती है, पर जब वासना होती है तब विरक्ति नहीं होती; और जब विरक्ति होती है तब वासना नहीं होती। किन्तु श्रमण तो वासना को मन से निर्वासित कर निर्विकारी अवस्था की उपलब्धि हेतु सतत् अभ्यास करता है। श्रमण रथ ! तुम आत्म-ज्ञान के तल में खड़े हो, शिखर पर जाओ, जहाँ नेमिप्रभु साधनरत हैं। उनकी साधना को देखो। उनके दर्शनमात्र से तुम्हारी साधना को सम्बल मिलेगा। जब कभी तुम्हारा हृदय संसार के आकर्षणों की तरफ झुके, तब तुम साधना रथ! प्रभु नेमिनाथ के दर्शन करना। तुम्हारे अस्थिर विचारों को-लड़खड़ाते कदमों को सम्बल मिलेगा।"

"वह क्षण धन्य है, जिस क्षण तुम्हारे हृदय में मुक्ति की भावना जगी, उस क्षण को सुरक्षित रखो। देह को नहीं देह के भीतर झाँको। श्रमणपद लोहे के चनों की चर्वणा के सदृश दुष्कर है। बालू के ग्रास की तरह नीरस है, महानदी गंगा के प्रवाह के विरुद्ध तैरने के समान है और दुस्तर महासमुद्र को भुजाओं से तैर कर पार करने की भाँति असाध्य है। असिधारा के समान इसका आचरण अतीव तीक्ष्ण है।"

राजुल का प्रतिबोध सुन श्रमणरथ के अन्तर्चक्षु खुले। साध्वी नारी के प्रतिबोध के प्रकाश ने रथ के तिमिराच्छन्न हृदय कक्ष को आलोकित किया।

—❖—